योग-साधन-माला, ग्रंथ ९

संध्याका अनुष्ठान।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि. सातारा.)

तृतीयवार १०००.

विक्रम संवत् १९८०, शालिवाहन शक १८४६,

ईसवी सन १९२४.

मूल्य ॥) आठ आने।

संध्याका अनुष्ठान ।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद् दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि. सातारा.)
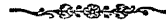
तृतीयवार १०००.
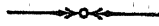
विक्रम संवत् १९८०, शालिवाहन शक १८४५,

ईसवी सन १९२४.

प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, (स्वाध्याय मंडलके लिये)
(औंध, जि० सातारा.)
मुद्रक—रामचंद्र येसु शेडगे, 'निर्णयसागर' छापखाना,
२३, कोलभाट गल्ली, मुंबई.

ॐ

संध्याके अनुष्ठानका फल ।

संध्याके अनुष्ठानका फल परम पूजनीय भीष्मपितामहने निम्न प्रकार कहा है—

ऋषयो नित्य-संध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥

महाभारत अनुशा. अ. १०४

"प्रतिदिन यथासमय संध्या करके ऋषियोंने दीर्घ आयु प्राप्त किया था ।" अर्थात् भीष्मपितामह के कथनानुसार संध्या का एक फल दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति निश्चित है । इसी संध्यायोग के उत्तम प्रकारके अनुष्ठानसे स्वयं भीष्म पितामहने अपनी १७० वर्षकी आयुकी अवस्थामें भी दस दिनतक घनघोर युद्ध करनेकी शक्ति अपने शरीरमें स्थिर रखी थी । ऋषिमुनियोंने तो इससेभी अधिक दीर्घ आयुष्य प्राप्त किया था । अर्थात् दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति यह एक प्रत्यक्ष फल संध्याके अनुष्ठान का है । अन्य फल आत्मिक-बल–विकास आदि अनेक हैं ।

संध्याके मंत्र केवल कंठद्वारा उच्चार करनेसेही उक्त फल नहीं प्राप्त होना है, परंतु मंत्रद्वारा सूचित अनुष्ठान योग्य प्रकार करनेसे ही उक्त फल प्राप्त हो सकता है । इसका कारण पाठकभी स्वयं जान सकते हैं । "भोजन करनेसे आनंद होता है" इस वाक्यका वारंवार उच्चार करनेसे आनंद नहीं होगा, परंतु दालरोटी आदि पदार्थ बनाकर उनका योग्य प्रकार सेवन करनेसे ही आनंद होता है । इसी हेतुसे पूर्वमीमांसाकार भगवान् जैमिनि महामुनिने कहा है कि (**आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्** । जै० सू०) वेदके मंत्रोंका मुख्य उद्देश्य अनुष्ठान करना है । अर्थात् यदि अनुष्ठान करना मुख्य उद्देश्य वेदमंत्रोंका है, तो स्पष्ट है कि अनुष्ठानके विना मंत्रोक्त सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । वेदका एक एक मंत्र, अथवा मंत्रका एक एक शब्द विशेष अनुष्ठान की सूचना दे रहा है । मंत्रोंके प्रतीक लेकर जो अनुष्ठान के सूचक मंत्रवाक्य बनाये गये हैं वे भी खास खास अनुष्ठान की सूचना दे रहे हैं । **"बहु बाह्वोर्बलं"** इस अथर्ववेद के मंत्रानुसार **"बाह्वोर्मे बलमस्तु"** तथा **"बाहुभ्यां यशो बलं"** ये मंत्रवाक्य बनाये गये हैं । यदि बाहु-बल-वर्धक अनुष्ठान की सूचना इस मंत्रद्वारा नहीं लेनी

है और तदनुसार आसनादिकोंका अनुष्ठान नहीं करना है, तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, कि वाहुओंके बलका संवर्धन नहीं होना है। और इस प्रकार प्रत्येक अंग और अवयव निर्दोष, नीरोग, सबल और पवित्र न हुआ, तो भीष्मपितामहके कथनानुसार संध्यानुष्ठानसे दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति भी केवल मंत्रोच्चार मात्रसेही नहीं होनी है। तात्पर्य जो अनुष्ठानका फल है, वह अनुष्ठान करनेसेही होगा। इसलिये संध्याके मंत्रोच्चारके साथ योग्य अनुष्ठान होना अत्यंत आवश्यक है।

अब यह विचार करना है कि संध्याका योग्य अनुष्ठान करनेसे दीर्घ आयुष्य-प्राप्तिरूप फल किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। योग्य अनुष्ठान वह होता हैं, कि जो योगकी रीतिके साथ अनुकूल होवे। **'संध्या-योग'** वास्तविक रीतिसे योग साधनका भाग है। इस संध्योपासनाके शब्दों और मंत्रोंद्वारा जिस अनुष्ठान की सूचना होती है, उनका योगपद्धतिके अनुसार ही अनुष्ठान होना चाहिए। जिस मंत्रसे जिस योगके अंगकी सूचना होती है उसका वर्णन इस पुस्तक में पाठक देख सकते हैं। इस पुस्तक में आगे संध्योपासनाके मंत्र, उनका शब्दार्थ, उनके मानसिक ध्यानका प्रकार, और उस समय करने योग्य योगके अनुष्ठान क्रमशः दिये हैं। यहां इतनाही देखना है कि इस अनुष्ठानसे किस प्रकार उक्त फल प्राप्त होता है। योग के आठ अंग हैं। उनमें यम नियम नामक दो अंगों द्वारा मनुष्यके उत्तम आचरणके नियम कहे हैं। (१) **अहिंसा**—दूसरोंको कष्ट न देना, (२) **सत्य**—सत्यका पालन करना, (३) **अस्तेय**—चोरी न करना, (४) **ब्रह्मचर्य**—उत्तम आचरणपूर्वक शरीरमें वीर्य स्थिर करना और ज्ञानार्जन करना, (५) **अपरिग्रह**—दान न लेना, दूसरोंके दानपरही अपना गुजारा न करना, (६) **शौच**—अंतर्बाह्य पवित्रता करना, (७) **संतोष**—संतोष धारण करना, (८) **तप**—शीत उष्ण आदि द्वंद्व सहन करनेका अभ्यास करना, (९) **स्वाध्याय**—सत्य विद्याका अध्ययन करना, (१०) **ईश्वरप्रणिधान**—ईश्वरभक्ति करना, ये योगके दस यम और नियम प्रत्येक मनुष्यके वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहारके लिये आदर्शरूप ही हैं। यदि संपूर्ण मनुष्य इन सुनियमोंका पालन करेंगे तो किसी प्रकारके क्लेश नहीं हो सकते। यह योगका बाह्य स्वरूप है अथवा यह बाह्य तैयारी है।

संध्याके अनुष्ठानमें आसनोंके अनुष्ठानसे शरीरके सब नसनाडियोंकी शुद्धि होती है, और खूनका प्रवाह सब शरीरमें उत्तम प्रकारसे होता है। संधि पर्व आदि स्थानोंमें जो विविध प्रकारके रोगबीज बैठे रहते हैं, रुधिरके अभिसरणसे धोये जाते हैं और आरोग्य संपादन होता है। रक्त की शुद्धि से स्वास्थ्य, दीर्घ आयु और बल आदि प्राप्त होते हैं, वह रक्तकी पवित्रता प्राणायामसे सिद्ध होती है। इस प्रकार यम नियम आसन और प्राणायाम के अनुष्ठानसे शरीरका स्वास्थ्य प्राप्त होता है। जहां स्वास्थ्य होगा वहां बल और दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना असंभव नहीं है।

स्वास्थ्य, बल और दीर्घ आयु ये तीन फल यद्यपि परस्पर भिन्न हैं, तथापि एक दूसरे पर अवलंबित भी हैं। बल और दीर्घ आयुष्य के विना केवल स्वास्थ्यसे उतना लाभ नहीं हो सकता। स्वास्थ्य और दीर्घ आयुके विना केवल बलसे कोई उन्नति नहीं होगी। तथा स्वास्थ्य और बलके विना केवल दीर्घ आयु प्राप्तभी नहीं हो सकती। योगके उक्त चार अंगोंद्वारा स्वास्थ्य, बल और दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती हैं। यदि प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के द्वारा मनका संयम हुआ, तो स्वास्थ्य बल और दीर्घ आयुष्य प्राप्त होनेसे कोई शंकाही नहीं। संध्याके अनुष्ठानमें धारणाध्यान का प्रकार आगे प्रत्येक मंत्रके अनुष्ठान में लिखाही है। प्रत्येक अनुष्ठान प्रायः मनकी धारणाके साथही किया जाता है। अर्थात् संध्योपासना में धारणाका उत्तम अभ्यास होता है, और साथ साथ मनसे ध्यानभी किया जाता है। योग्य प्रकार धारणा ध्यान होनेसे थोडे वर्षों के अनुष्ठानसे क्रमशः समाधिकी भूमिकाओंमें भी प्रगति होती है। तात्पर्य निश्चयपूर्वक विश्वासके साथ अनुष्ठान करनेसे मनकी स्वाधीनता प्राप्त होती है। पूर्वोक्त प्रकार शरीर का स्वास्थ्य, और धारणाध्यानके अभ्याससे मनका संयम होनेसे अपमृत्युका भय दूर होना कोई अशक्य बात नहीं है। शरीर में ऋणविद्युत् है और मनमें धनविद्युत् है। दोनोंका विकास होनेसे दोनों प्रकारके विद्युत् प्रवाह ठीक चलने लगते हैं। उक्त दोनों प्रवाहों में विषमता होनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है। जब विषमता न होगी तब स्वास्थ्यही स्वास्थ्य प्राप्त होगा इसमें क्या संदेह है?

त्रिदोष उत्पन्न होनेतक शरीरकी स्थिति रह सकती है। इस लिये कहते हैं कि जो योगाभ्यासद्वारा शरीर और मनको स्वाधीन करलेते हैं, वे **"इच्छा-**

मरणी" होते हैं, जैसे भीष्माचार्य होगये थे। इस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होना संभव है, अर्थात् यह सिद्धि प्राप्त होनेकी कल्पना मनमें ठीकप्रकार आ सकती है। जिनकी उत्पत्ति उत्तम सुदृढ मातापिताके उत्तम निर्दोष रजवीर्यसे होगई है, उन्होंने यदि आठ वर्षकी अवस्थासे इस प्रकार योगानुष्ठानपूर्वक संध्योपासना प्रतिदिन की, तो निःसंदेह उत्तम अतिदीर्घ आयु, बल और स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। यही इच्छामरण की सिद्धि है।

प्रत्येक शारीरिक हलचलसे शरीरकी शक्ति क्षीण होती है। योगके अनुष्ठान-से यह क्षीणता दूर होती है, और प्रत्येक शक्तिका विकास होने लगता है। शक्तिकी क्षीणतासेही मृत्युका आक्रमण होता है; यदि शक्तिकी क्षीणता न हुई अथवा योगियोंकी प्रतिज्ञाके अनुसार शक्तिका विकास होने लगा, तो मृत्यु किसप्रकार आ सकता है? तात्पर्य, उत्तम अनुष्ठान करनेवाला योगी मृत्युके आक्रमणसे नहीं मरता, परंतु अपनी इच्छासे मरता है। जो शरीर उत्पन्न होगया है उसका नाश अवश्य होनाही है। यह परमेश्वर का नियम होनेके कारण कोई मनुष्य इस नियमको तोड नहीं सकता। परंतु योगाभ्याससे मृत्युको अपने आधीन कर सकता है। संपूर्ण प्राणी मृत्युके आधीन हैं, केवल **"उत्तम योगी ही मृत्युको अपने आधीन कर सकता है।"**

योगाभ्याससे तीनसौ वर्षतक आयु होनेकी संभावना है। इतिहास १७० वर्षतक मनुष्य जीवित रहेथे ऐसी साक्षी दे रहा है। कितनाभी साधन किया तथापि मनुष्यके व्यवहारमें किसी न किसी बात में त्रुटि रहती ही है, इस कारण ३०० वर्षकी आयु प्राप्त होवे वा न होवे, सौ डेढसौ वर्षकी आयु प्राप्त की जा सकती है। जो उत्तर अवस्थामें योगाभ्यास करेंगे उनको उतने प्रमाणसे न्यून फलकी आशा करनी चाहिए। परंतु जो छोटी अवस्थासे उत्तम गुरुके पास रहते हुए निश्चयपूर्वक अनुष्ठान करेंगे उनको उक्त सिद्धि निःसंदेह हो सकती है।

जो योगी अपनी दैनिक हलचलके कारण होनेवाली क्षीणता को योगाभ्यास-द्वारा स्वशरीरसे दूर कर सकते हैं, उनको मृत्युका भय नहीं रहता। जिस समय वे मरना चाहते हैं, उस समय भोजन थोडा थोडा कम कर देते हैं, और अंतमें केवल जलपर ही रहते हैं, इसके पश्चात् प्राणायामद्वारा अपने सब शक्तियोंको एकत्रित करके इस शरीरको स्वयं अपनी इच्छासे छोड देते हैं। यह सारांशसे इच्छा-मरण की सिद्धिका स्वरूप है।

यद्यपि मुझे स्वयं इस बातका अनुभव नहीं है, और मुझमें इस प्रकारकी योग्यता यद्यपि बिलकुल नहीं है, तथापि एक दो सत्पुरुषोंके इस प्रकारके मृत्यु प्रत्यक्ष देखनेसे, और ग्रंथोंके वचनोंसे जो ज्ञात हुआ है, उसका विचार करनेसे, मेरा पूर्ण विश्वास हुआ है, कि प्रयत्नसे इस प्रकारकी योग्यता प्राप्त की जा सकती है, और इस प्रकारकी योग्यता प्राप्त करनेका अनुष्ठान अपनीही संध्योपासनामें प्रारंभसे अंततक विद्यमान है।

तात्पर्य इच्छा-मरण की सिद्धि केवल काल्पनिक नहीं है परंतु प्रयत्नसे अवश्य साध्य होनेवाली है। इसलिये प्रत्येकको संध्योपासनाका अनुष्ठान प्रतिदिन अवश्य करना चाहिए। संध्योपासनाकी सिद्धि उपासकके मनकी अवस्थापर निर्भर है। गोपथ ब्राह्मणमें कहा है—

स मनसा ध्यायेद्, यद् वा अहं किंचन
मनसा ध्यास्यामि। तथैव तद् भविष्यति।
तद्ध स्म तथैव भवति॥

गोपथ. ब्रा. पू. १।९

"वह मनमें इस निश्चयको धारण करे, कि मैं जिसका मनसे ध्यान करूंगा, वह बात वैसीही बन जायगी। निश्चयसे वह बात वैसीही बन जाती है।"

योगशास्त्रका यही बडा भारी सिद्धांत है। सर्वसाधारण लोकोंकी मानसिक निर्बलता उनके अज्ञानमें है। वे समझते हैं, कि हम निर्बल और तुच्छ हैं। जब लोक बोलने कहने और भजन आदिमें भी 'मैं निर्बल हूं' इसी बातका जप करते हैं, तब उनके निर्बल होनेमें कोई शंकाही नहीं है। उक्त गोपथके वचनमें कहाही है, कि जो मनसे ध्यान किया जाता है, ठीक वैसीही सिद्धि होजाती है। अर्थात् जो निर्बलताका ध्यान करेंगे, वे निर्बल बनेंगे। परंतु **"यदि बल का ध्यान किया जायगा, तब बलवानभी बन सकेंगे।"** यदि यह नियम सब जानेंगे, तब सबको अपनी शक्तिका पता लग जायगा।

उक्त नियमके अनुसार जो मनुष्य इच्छा-मरण की सिद्धि प्राप्त करने का निश्चयपूर्वक ध्यान करेंगे और साथ ही योग का अनुष्ठान करते जांयगे, उनको वैसी सिद्धि होनेमें क्या शंका है? निश्चयसे सिद्धि होसकती है। न केवल यह एक परंतु संपूर्ण अन्य शक्तियां प्राप्त हो सकतीं हैं। परंतु विश्वास और निश्चयके साथ अनुष्ठान होना चाहिए।

संध्योपासना की आद्योपांत सब विधि उक्त नियम के अनुसार ही आचरण करने योग्य है। अर्थात् जो अनुष्ठान करना होगा, मनके पूर्ण विश्वासके साथ और निश्चयात्मक बुद्धिके साथ ही करना चाहिए। मन में किसी प्रकारका संशय रहना नहीं चाहिए। संशयके कारण ही सब हानि होती है। भीष्मपितामहनें जो संध्योपासनाका फल कहा है, वह उक्त मनोविज्ञानके नियमानुसार ही लिखा है। प्रतीत होता है कि भीष्मपितामहके समय संध्योपासनाकी संपूर्ण विधि उपनयन-संस्कारके साथही सिखाई जाती होगी। यदि वह पाठप्रणाली फिर प्रारंभ की जायगी, तो उक्तप्रकार फल होना असंभव नहीं है। आशा है कि उपासक लोग इस विधिके अनुसार उपासना करके पूर्ण लाभ प्राप्त करेंगे।

इस संध्याविधिमें मुख्य तीन भेद हैं। (१) प्रारंभसे अघमर्षणतक वैयक्तिक उन्नतिका ध्यान होनेसे यह भाग एक व्यक्तिकी उन्नतिका विधि बता रहा है। (२) तदनंतर मनसा परिक्रमाके मंत्रों में सामुदायिक, सार्वजनिक, जातीय, सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा जनताके अभ्युदयका मार्ग स्पष्ट हुआ है, इसलिये यह दूसरा भाग सामुदायिक उन्नतिका विधि बता रहा है। (३) इसके पश्चात् का संपूर्ण भाग परमात्मोपासना का है। इस दृष्टिसे पाठकोंको इस संध्याविधिका विचार करना चाहिए। व्यक्ति, समाज और संपूर्ण जगत् की उन्नति से ही सबकी परिपूर्णता होती है, यह वैदिक सिद्धांत सर्वत्र वेदमें प्रसिद्ध है, और उसी बातका प्रतिबिंब इस संध्योपासनामें स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

जो विधि इस पुस्तकमें लिखी है, आदिसे अंततक वैसी ही करनेसे तीनचार घंटेका समय लग जाता है। हरएक के पास इतना समय प्रतिदिन आजकलके जीवन युद्ध के कारण मिलना अशक्य नहीं, परंतु निःसंदेह कठिन है। प्रातःकाल चार बजे ठीक उठकर अथवा शक्य हुआ तो आधा घंटा पूर्व उठनेसे, प्रातर्विधि करने के पश्चात् आठ साढे आठ बजेतक उपासना के लिये समय पर्याप्त मिल सकता है। परंतु सर्वसाधारण जनोंको इतना सवेरे और शामको समय नहीं मिलेगा। ऐसी अवस्थामें उनको दो ही प्रकार हैं। (१) एक अवस्थामें वे प्रत्येक अनुष्ठान थोडा थोडा कर सकते हैं, (२) अथवा दूसरी अवस्थामें कुच्छ बातोंका स्मरण मात्र करके किसी

आवश्यक अन्यभाग का पूर्ण अनुष्ठान कर सकते हैं। इस प्रकार करनेसे संपूर्ण फल तो प्राप्त नहीं होगा, परंतु कुछभी न मिलनेकी अवस्थामें बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है। इतना तो आवश्यक ही है कि हरएक को संध्याके लिये प्रतिदिन दो घंटेका समय कमसे कम अवश्य ही नियत करना चाहिए। और अपने समय और अपनी शारीरिक अवस्थाके अनुसार अपना अनुष्ठान निश्चित करना चाहिए। प्रारंभमें प्राणायामादिक के लिये थोडाही समय पर्याप्त होसकता है, परंतु जैसा अभ्यास बढेगा वैसा अधिकाधिक समय आवश्यक होगा। इसलिये अपनी अनुकूलताके अनुसार सबको यथायोग्य निश्चय करना चाहिए। और तदनुसार अपना अनुष्ठान प्रतिदिन करना योग्य है।

इस पुस्तकमें प्रत्येक बातकी परिपूर्ण मर्यादा लिखी है। अपने समयके अनुसार उस विधि में न्यूनाधिक करना अयोग्य नहीं होगा। जैसा–प्राणायामोंकी संध्या इस पुस्तकमें ८० लिखी है। पूर्णप्राणायाम ८० वार करने के लिये दो घंटेका समय अवश्य लगता है। यदि केवल प्राणायाम के लिये दो घंटेका समय गया तो अन्य संध्याविधि के लिये बहुतही समय लगेगा। इस अवस्थामें ८० वार के स्थानमें प्राणायामोंकी संख्या २० वार कर सकते हैं। इसीप्रकार अन्य आसनादिकों के विषयमें समझना उचित है। यहां पूर्णता की अवस्था लिखी है। समयके अभावमें अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार जो न्यूनाधिकता करना उचित होगा, उतना उपासक कर सकते हैं। क्यों कि सबकी अवस्था, परिस्थिति और योग्यता भिन्न भिन्न होती है, इसलिये सबके लिये एकही नियम योग्य नहीं हो सकता। यहां पूर्ण मर्यादा लिखी है, अब पाठकोंकी रुचि है, कि वे अपनी परिस्थिति में, तथा अपने समय और आयुकी अवस्था में जो योग्य होगा, वह ही आचरण करें। जो जितना अनुष्ठान जिस प्रकार करेगा, उतनाही उसको फल प्राप्त हो सकता है। आशा है कि पाठक अधिकसे अधिक फल प्राप्त करेंगे।

औंध (जि. सातारा) ८।२।२१ } श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडल.

श्री भीष्मपितामह

की

साक्षी ।

ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्
दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥

महाभारत अनुशा. अ. १०४

प्रतिदिन यथा समय संध्या करके ऋषियोंने दीर्घ आयुष्य प्राप्त किया था ।"

संध्याका अनुष्ठान ।

(१) संध्याकी पूर्व तैयारी ।

संध्योपासना करनेके लिये निम्न प्रकार अपनी तैयारी कीजिए—

(१) प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तके समय उठकर प्रसन्नचित्तसे शौच मुख-मार्जन आदि करनेके पश्चात्, विशेषतः शीत उदकसे—(अथवा शरीरकी अवस्थाके अनुसार आवश्यक हो तो कोसे अथवा गर्म जलसे)—स्नान करके, सब धोये हुए कपडे धारण कीजिए। और सब मलिन वस्त्रोंको दूर कीजिए। पश्चात् रमणीय, शांत, स्वच्छ और आनंदकारक स्थानमें आसन रख कर बैठिए।

(२) मन संतुष्ट रखिए। आपके व्यवहारके हानि लाभ, ईर्ष्या द्वेष, अथवा अपने घरके झगडे इस समय मनमें न रखिए। अपने मनको कहिए, कि ईर्ष्याद्वेषका विचार करनेका यह समय नहीं है।

(३) द्वंद्व सहन करनेकी शक्ति अपने शरीर, इंद्रिय और मनमें बढा-इए। शीत सहनेका अभ्यास, उष्णता सहन करनेका अभ्यास तथा अन्य प्रकारके अभ्यास, अपने देशके ऋतुके अनुसार करते रहिए। इससे आप नीरोगता प्राप्त कर सकते हैं।

(४) वेदका तथा मनको उच्च और बलवान बनानेवाले पुस्तकोंका प्रतिदिन अभ्यास कीजिए। मनमें बुरे विचारोंका संचार करनेवाले ग्रंथ न पढिए। तथा ऐसेही मनुष्योंकी संगतिमें रहिए कि जो विशेष आत्मिक बल और मनकी शक्तिसे प्रभावित हुये हैं।

(५) परमेश्वर सर्वत्र है, और वह ही सबका सच्चा पालन करनेवाला न्यायकारी प्रभु है, ऐसा हृदयमें विश्वास रखिए। सदा सर्वदा उसीका स्मरण रखिए।

(६) शरीर, इंद्रिय, वाणी, मन और विचारसे किसीको कष्ट न देनेका निश्चय कीजिए। तथा स्वाधीनता, स्वसंरक्षण और आत्मसंमान का भाव सदा जागृत रखिए। निर्बलोंका संरक्षण करने और उनको ऊपर उठानेका कार्य करनेके विचार से सदा कर्म करते रहिए।

(७) सदा सत्यका अवलंबन कीजिए। असत्यका आश्रय कभी न कीजिए। सत्यसे ही सबकी उन्नति होनी है।

(८) चोरी करके सुख भोगनेका भाव मनसे दूर कीजिए। न्याय और धर्मयुक्त व्यवहार से जो प्राप्त होगा उसीमें संतुष्ट रहिए।

(९) अपने सब आंतरिक और बाह्य इंद्रियोंका संयम और दमन कीजिए। अच्छे विचार मनमें धारण करनेसे सब इंद्रियां वशमें रह सकतीं हैं। विशेषतः ब्रह्मचर्य स्थिर रखने का निश्चय कीजिए। गृहस्थाश्रममें ऋतुगामी होनेसे ब्रह्मचर्य धारण करनेकी सिद्धि प्राप्त होती है। वीर्य स्थिर रखनेसे आरोग्य, बल और दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो सकता है।

(१०) अपनी ही शक्तिसे अपने कार्य कीजिए। दूसरोंपर निर्भर न रहिए। स्वाधीनता, स्वावलंबन आदि उच्च भावोंका धारण कीजिए।

इन नियमोंका सर्व साधारण रीतिसे सदाही आपको पालन करना चाहिए। जब सहज वृत्तिसे उक्त दस नियमोंका पालन होगा, अथवा जब उक्त नियम आपके स्वभावरूप ही बन जांयगे, तब आपके आत्माकी शक्ति प्रकाशित होने लगेगी।

आसन—जहां संध्योपासना का अनुष्ठान करना है वहां बैठनेके लिये अच्छा आसन रखिए। स्वच्छ भूमिपर एक चौकी अथवा अच्छा फट्टा रखिए, उसपर दर्भासन रखकर उसपर कृष्णाजिन रखिए। और उसपर तीन अंगुल उंचा ऊनी आसन रख कर उसपर एक अंगुल उंचा सूती आसन रखिए। आसन बहुत नरम न हो और बहुत सखत भी न हो, बहुत सखत होनेसे घंटा दो घंटे बैठा नहीं जा सकता, और बहुत नरम होनेसे भी ढीलेपन आजाता है। ऊपर लिखे सभी पदार्थ चाहिए ऐसा नहीं है, मुख्य बात योग्य आसन बनानेकी है। उष्ण देशमें बहुत ऊनी आसनसे कष्ट होंगे और सर्दी में ऊनी आसनसे ही आराम प्राप्त होगा। इत्यादि बात विचारसे जानने योग्य है।

उक्त आसनपर बैठिए। साथ आचमन करनेके लिए शुद्ध जलसे पूर्ण तांबेका कलश, छोटा कौल अथवा पात्र, चमस और पानी डोलनेके लिये एक बडा पात्र रखिए। कलशसे छोटे पात्र में थोडा पानी लेकर उसमेंसे चमससे हाथपर पानी लेकर उसका आचमन करना होता है; इस लिये उक्त बर्तन चाहिए। जब आचमनादिक होगा तब हाथ धोनेके लिये एक बडा पात्र काम देगा। हाथ धोनेके पश्चात् हाथ पूछनेके लिये एक कपडा भी साथ रखिए।

इस प्रकार तैयारी करके मनका पूर्ण निश्चय करके उक्त आसनपर बैठकर संध्योपासनाकी पूर्व तैयारीका प्रारंभ कीजिए।

---

(१) प्रथमं आचमनम्।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ तै. आ. १०।३२।१
ॐ अमृताऽपिधानमसि स्वाहा ॥ तै. आ. १०।३५।१

अर्थ—हे (ॐ) परमेश्वर! तू (अमृत-उपस्तरणं) अमरपनका आच्छादन है। ऐसा (सु—आह)ठीक कहा जाता है। हे (ॐ)परमेश्वर! तू (अमृत-अपिधानं)अमृतका आवरण है। ऐसा (स्व—आह) मेरा आत्मा कहता है।

मानसिक ध्यान—हे परमेश्वर! तू अपने अमरपन के साथ सब जगत्के ऊपर तथा अंदर फैला है, ऐसा जो कहा है, वह बिलकुल ठीक कहा है। तथा मेरा आत्मा भी तुम्हारी सर्वत्र उपस्थिति को मानता और अनुभव करता है।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त एक एक मंत्रका उच्चार करके उक्त प्रकार मनकी भावना करनेके पश्चात्, एक एक मंत्रसे एक एक आचमन कीजिए। जब दो आचमनोंका जल अंदर चला जायगा तब "परमेश्वर की सर्वव्यापकता" पर मनकी भावना स्थिर कीजिए और दो चार मिनिट तक अपने आपको परमेश्वरमें और परमेश्वर को अपने अंदर और बाहर अनुभव करनेका यत्न कीजिए। जिस प्रकार बडे तालावमें तैरनेके समय आप पानीके बीचमें

रहते हैं, उसी प्रकार अमृतमय परमात्मामें अपने आपको अनुभव कीजिए। पांच मिनिट इस प्रकार मन स्थिर करनेका यत्न कीजिए।

ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

आ. गृ. १।२४।२९; मा. गृ. १।९।१६

अर्थ—हे (ॐ) परमेश्वर! (मयि सत्यं श्रयतां) मेरे अंदर सत्य स्थिर रहे। (मयि यशः श्रयतां) मुझे यश प्राप्त होवे। (मयि श्रीः श्रयतां) मेरे अंदर दिव्य शक्ति स्थिर रहे, और (श्रीः) मेरे पास धन रहे। इस लिये मैं (स्व-आ-हा) अपने सर्वस्वका अर्पण करता हूं।

मानसिक ध्यान—हे ईश्वर! मेरी इच्छा है कि अपने आत्मा के अंदर सत्यनिष्ठा स्थिर रहे, मेरा यश वृद्धिंगत होवे, मेरी दिव्य शक्ति बढे और मुझे ऐहिक सुख साधनोंके साथ आत्मिक आनंद प्राप्त होवे। हे परमेश्वर! इस हेतुसे मैं तेरे धर्मकार्यकी पूर्णता करनेकेलिये अपने सर्वस्वका अर्पण करता हूं।

अनुष्ठान—इस मंत्रसे जलका एक आचमन कीजिए। तत्पश्चात् मनमें विचार धारण कीजिए कि सत्य, यश, और श्री इन तीनोंमें सत्य सबसे मुख्य है। सत्यका पालन करने के लिये आवश्यक हुआ तो मैं यश और श्री का त्याग करके भी सत्यका आग्रहके साथ पालन करूंगा। कभी मैं सत्यको छोडकर यश और श्री के लोभसे असत्यकी ओर नहीं जाऊंगा। सत्यका पालन करते हुए जितना यश मिलेगा उतनाही मैं यश प्राप्त करूंगा। तथा सत्य और यशके साथ जो श्री मिलेगी उतनी मेरे लिये पर्याप्त है। सत्य, यश, श्री में पहिला सबसे मुख्य और आवश्यक है, यश मध्यम है और श्री गौण है। [यहां अपने दैनिक आचरणमें आप किस प्रकार व्यवहार कर रहे हैं, इसका विचार कीजिए, और यदि कोई दोष होगा तो दूर करनेका यत्न कीजिए.]

इस प्रकार विचार होनेके पश्चात् हाथ धोनेके नंतर हाथसे थोडा जल लेकर मुख को स्पर्श कीजिए और निम्न मंत्र कहिए—

(२) अंग-स्पर्शः ।

ॐ वाङ् म आस्येऽस्तु ॥ १ ॥

अर्थ—हे (ॐ) ईश्वर! (मे आस्ये) मेरे मुखमें (वाक्) वक्तृत्वशक्ति (अस्तु) रहे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरे मुखमें उत्तम प्रभावशाली वक्तृत्व करनेकी शक्ति स्थिर रहे। वक्तृत्वका किसी प्रकारका दोष मेरी वाणीमें न रहे।

अनुष्ठान—इस मंत्रसे मुखको जलस्पर्श करके अपनी सब मानसिक शक्ति अपने "वाक् इंद्रिय" पर स्थिर कीजिए। यदि आपके वक्तृत्वमें उच्चारण आदिका कोई दोष होगा, तो इस समय उस दोषको दूर करनेका प्रयत्न अपने मनकी प्रेरणासे कीजिए। मनको कहिये कि "मैं नहीं चाहता कि इस प्रकारका कोई दोष मेरे वक्तृत्व में रहे।" जो आप चाहेंगे वह ही आपके शरीरमें मनकी प्रेरणासे बनने लगेगा। यदि आप दिलसे चाहेंगे तो आप थोडेही दिनोंमें इस बातका अनुभव कर सकेंगे। अस्तु। इस प्रकार इस समय आप अपने वक्तृत्वविषयक संपूर्ण दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न कर सकते हैं। [अंगस्पर्शके प्रत्येक मंत्रमें 'बल ओज और (अ-रिष्ट) अक्षीणता' की अनुवृत्ति है। इसलिये इनकी वृद्धि करनेका विचार इस-अंगस्पर्शके अनुष्ठानके समय करना उचित है॥]

ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ २ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! (मे नसोः) मेरी नासिकाओंमें प्राणशक्ति रहे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरी नासिकामें प्राणशक्ति उत्कृष्ट बलके साथ अपना कार्य करती रहे। तथा श्वास आदि हृदयस्थानकी बीमारी कभी मेरे पास न आवे।

अनुष्ठान—जलसे नासिका को स्पर्श कीजिए और उक्त भावना के साथ अपना मन, अपनी नासिकाद्वारा संचार करनेवाली, अद्भुत प्राणशक्तिपर स्थिर कीजिए। विश्वव्यापक परमात्माकी प्राणशक्ति मेरे अंदर संचार कर रही है, इस बातका आप इस समय अनुभव कीजिए।

आप चाहे इस समयका अनुष्ठान बैठकर करें, अथवा आपकी इच्छा हो तो आप खडे रहकर भी कर सकते हैं। क्योंकि अब आपको 'भस्त्रा' प्राणायाम करना होगा। भिन्न प्रकृतिके लोक होते हैं। कईयों को बैठकर तथा दूसरों को खडा रहकर 'भस्त्रा' प्राणायाम करना सुगम होता है। इस लिये आप अपनी प्रकृतिके अनुसार कर सकते हैं। नासिकाद्वारा वेगसे श्वास अंदर लेने और वेगसे छोडनेसे भस्त्रा प्राणायाम होता है। लुहार की जो चमडे की धवकनी होती है उसको भस्त्रा कहते हैं। जिस प्रकार वेगसे उससे वायु चलता है और अग्निको प्रज्वलित करता है, उसी प्रकार भस्त्रा प्राणायामसे वेगके साथ श्वास और उच्छ्वास करनेसे शरीरके तेजकी वृद्धि होती है। भस्त्रा प्राणायाम के कई प्रकार हैं। **(१) पहिला प्रकार**—हाथके अंगुठेसे दहने नासिकाद्वार को बंद कीजिए और दूसरे नासिकासे वेगके साथ श्वास लीजिए और वेगके साथ छोडिए। **(२) दूसरा प्रकार**—हाथ की अंगुलीसे बायें नासिकाद्वार को बंद करकें दूसरी नासिकासे पूर्ववत् वेगके साथ श्वास और उच्छ्वास कीजिए। **(३) तीसरा प्रकार**—दोनों नासिकाद्वार खुले रखकर वेगसे लंबे और पूर्ण श्वास और उच्छ्वास कीजिए। **(४) चौथा प्रकार**—दायें नाकसे श्वास लेकर बांये नाकसे छोडिए और बांयेसे लेकर दांयेसे छोडिए। लेना और छोडना पूर्ववत् वेगसे कीजिए। भस्त्राके ये मुख्य चार प्रकार हैं। छातिके फेंफडोंमें श्वास वेगसे परंतु पूर्णतासे भरना चाहिए, परंतु श्वास भरने के समय पेटकी ओर के फेंफडोंके नीचले भागमें प्राण पहिले पहुंचना चाहिए और पश्चात् छातिके फेंफडों के ऊपरले भागमें पहुंचना चाहिए। अभ्यास करते समय उक्त बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए। श्वास छोडने के समय एकदम छोडिए और गुदाको ऊपर खेंचकर नाभीके साथ पेट को जोर से अंदर दबाइए। आप श्वास जोरसे बाहिर छोडने का प्रयत्न करेंगे तो उक्त बात स्वयं होती है, परंतु मनके वेगसे उनको अधिक बलके साथ करना चाहिए, इसीलिये यहां लिखा है। प्रारंभमें प्रत्येक प्रकारका भस्त्रा प्राणायाम केवल तीन तीन बार कीजिए। सब प्रकारका मिलकर बारह बार हो जायगा [**सूचना**—आपको यहां पूर्णतासे स्मरण रखना उचित है, कि प्राणायाम से उत्साह और विलक्षण अभौतिक आनंद प्राप्त होता है,

इस लिये शक्तिसे अधिक प्राणायाम करने की ओर प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्तिको रोकना चाहिए। प्राणायामका अभ्यास शनैःशनैः करनेसे दीर्घ आयुष्य, आरोग्य आदिकी प्राप्ति होती है, परंतु अविचारसे यदि आप शक्तिसे अधिक प्राणायाम करेंगे तो शरीर रोगी बनकर आयुका नाश होगा। इस लिये प्रथम वर्ष दो वर्ष, जबतक प्राणायाम का अच्छा अभ्यास न होगा, तबतक आपको शनैःशनैः ही अभ्यास बढाना उचित है। उक्त भस्त्रा प्राणायाम आप पंद्रह दिनोंमें एक एक बढा सकते हैं और जब प्रत्येक की संख्या बीसतक पहुंच जायगी तब और अधिक संख्या बढाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येककी बीसतक संख्या बढानेके लिये अपको एक वर्षका अवधि कोई अधिक नहीं है।

ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! (मे अक्ष्णोः) मेरे दोनों आंखोंमें (चक्षुः) दृष्टि (अस्तु) रहे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्ति तक मेरे दोनों आंखोंमें देखनेकी उत्तम शक्ति स्थिर रहे। मेरी दृष्टिकी मंदता कभी न होवे और अंधापन भी मेरे पास कभी न आवे।

अनुष्ठान—इस समय अपने नेत्रोंके दोषोंको दूर करनेका निश्चय आपको करना चाहिए। जलसे दोनों आंखोंको स्पर्श कीजिए। और अपने मनका सब बल अपने आंखोंमें स्थिर कीजिए। पांच छहवार प्रेमसे अपने आंखोंपरसे हाथ घुमाइए। अंगुलियां घुमानेकी अपेक्षा यदि आप हाथका नीचला नरम भाग घुमायेंगे तो अधिक अच्छा है। हरएक प्रयोग करनेके समय आपको अपना मन इस समय आंखमें ही स्थिर रखना चाहिए और इधर उधर का कोई विचार करना उचित नहीं है, क्यों कि सब कार्य आपको अपने मनद्वारा ही करना है। इस लिये जिस अवयवमें इष्ट शक्ति बढानी है, उसीमें मनको स्थिर करकेही अनुष्ठान करना चाहिए। अन्यथा

सिद्धिकी अपेक्षा न कीजिए। आप जहां बैठे या खडे होंगे, उस स्थान के सामने यदि दिवार होगी तो दिवारके ऊपर आंखसे 'अ—आ' के समान एक खडी रेषा की कल्पना कीजिए और उसी रेषामें ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर अपनी दृष्टिको घुमाइए। पांच वार 'अ—आ' में घुमानेके पश्चात् 'इ–ई' में पांच वार घुमाइए। दाईंसे बाईं और बाईंसे दाईं ओर दृष्टि घुमाना चाहिए। पश्चात् 'उ—ऊ' में नीचले कोनेसे ऊपरले कोनेतक और ऊपरले
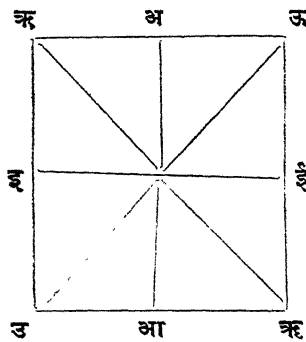
कोनेसे नीचले कोनेतक दृष्टिका भ्रमण करना चाहिए। तत्पश्चात् 'ऋ—ॠ' रेषाके अनुसार ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर अपने आंखोंको घुमाना चाहिए। इस प्रकार चार गतियां सिद्ध होतीं हैं। प्रत्येक गति मनकी स्थिरता दृष्टिमें करके ही करना उचित है। ध्यान रखिए कि किसी प्रकार सिर न हिलाते हुए, केवल आंखकी पुतलीको ही ऊपर नीचे, दाईं बाईं ओर घुमाना चाहिए। तथा प्रत्येक समय ऊपरसे ऊपर, नीचेसे नीचे, दाईंसे दाईं, बाईंसे बाईं और तिरच्छीसे तिरच्छी जितनी पुतली जा सके उतनी लेजानेका यत्न करना चाहिए। यदि सामने दीवार न होगी तो कल्पना से उक्त अभ्यास करना उचित है। इस अभ्यासके पश्चात उक्त दीवार पर बडेसे बडा गोल चक्कर अपनी दृष्टिसे ही खींचिए। पहिले पांच चक्कर दाईंसे बाईं ओर (←) खींचिए पश्चात उतने ही बाईंसे दाईं ओर(→) खींचिए। दृष्टिसे खींचे जानेवाले चक्कर केवल कल्पनाके ही होंगे। यहां तात्पर्य इतना ही है कि सिर न हिलाते हुए आंखकी पुतलीको आप जितना
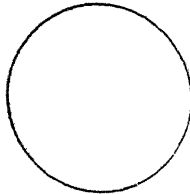
गोल घुमा सकते हैं उतना घुमाइए। इससे आपकी पुतली बलवान और शुद्ध हो जायगी। यदि इस प्रकारका बचपनसे (आठ वर्षकी आयुसे) अभ्यास किया जायगा, तो ऊमरभरमें आयनक (उपनेत्र) लगाने की

आवश्यकता न होगी, और सौ वर्ष सेभी अधिक आयुमें दृष्टि उत्तम रहेगी। परंतु जो आयनक लगाने लगे हैं, उनको भी प्रयत्नसे आयनक की आवश्यकता नहीं रहेगी, अथवा कमसे कम आंखोंकी कमजोरी बढेगी नहीं। इस प्रकार अपने आंख बलवान करनेका अभ्यास कीजिए।

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ ४ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! (मे कर्णयोः) मेरे दोनों कानोंमें (श्रोत्रं) श्रवणकी शक्ति रहे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्ति तक मेरे कानोंमें उत्तम श्रवण की शक्ति निवास करे। बधिरता की बाधा मुझे कभी न होवे।

अनुष्ठान—अपने हाथसे थोडेसे जलका स्पर्श कानको कीजिए और अपने मनकी सब शक्ति अपने कर्णेंद्रियमें प्रेरित कीजिए। सिवाय कानके इंद्रिय स्थानके अपना मन और किसी बातका विचार भी न करे। अपनी इच्छाशक्तिद्वारा मनको वहां स्थिर करके वहांकी सब निर्दोषता करनेके लिये उस मनको प्रेरित कीजिए। सूक्ष्म शब्द सुननेका आप इस समय यत्न कीजिए। आपके पास छोटी घडी होगी तो उसको दूर रखिए और उसका सूक्ष्म शब्द लक्ष्यपूर्वक सुननेका अभ्यास कीजिए। प्रतिदिन घडीका अंतर बढाते जाइए। किसी अन्य प्रकार शब्द श्रवणकी योजना आप कर सकते हैं। इस प्रकारके अभ्याससे आपकी श्रवणशक्ति तीक्ष्ण होती जायगी, और आश्चर्यकारक श्रवणेंद्रियका विकास होगा।

मन एक ऐसी शक्ति है, कि निश्चय और प्रेममय भक्तिसे जो बात उसको कही जायगी वह उससे बन जाती है। इस शक्ति के कारण यहां कर्णेंद्रिय की नीरोगता संपादन की जा सकती है।

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ ५ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! (मे बाह्वोः) मेरे बाहुओंमें बल होवे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरे बाहुओंमें बडी शक्ति स्थिर रहे। मेरे बाहु कभी कृश न हों।

अनुष्ठान—हाथसे थोडासा जल लेकर बाहुओंपर लगाइए। जल इतना ही लीजिए कि वह सब बाहुपर लगाया जा सके परंतु नीचे गिरने इतना अधिक न लीजिए। दो चार वार हाथसे मर्दन होते ही सूख जावे इतना ही जल लीजिए। जलस्पर्श होते ही उस स्थानके रक्तमें गति उत्पन्न होगी। इसी समय अपने मनकी सब शक्तिकी धारणा अपने बाहुओंपर कीजिए। मनको अपने संकल्पसे प्रेरित कीजिए कि वह बाहुओंमें बल बढानेका योग्य प्रबंध करे। आप थोडेही महिनोंके नित्य अभ्याससे अनुभव कर सकेंगे कि इस प्रकार मनकी इच्छाशक्तिद्वारा विशिष्ट स्थानपर रुधिर लाया अथवा भेजा जा सकता है, और वहांकी नीरोगता प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार मनकी एकाग्रता बाहुओंके स्थानमें करके और बलवान हृष्टपुष्ट बाहुओंका स्मरण करते हुए आप निम्न आसनोंमेंसे कुछ आसन कीजिए। कुक्कुटासन, गोमुखासन, द्विपाद–शिरासन, ताडासन, वृक्षासन, ऊर्ध्व धनुषासन, गरुडासन, हस्त–भयंकरासन, भुजासन, भुजंगासन, मयूरासन, गर्भासन, हस्तवृक्षासन; मुक्तहस्तवृक्षासन, उत्तानकूर्मासन, पर्वतासन, दोलासन, हंसासन, आदि आसन हैं, कि जो इस समय करने योग्य हैं। कोई चार पांच आसन इस समय कीजिए, जिससे बाहुओंके स्थानकी निर्मलता और निर्दोषता सिद्ध होकर वहांका बल बढ जायगा। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे बाहुओंका व्यायाम और आसन हैं, कि जो इस समय करनेमें कोई हानि नहीं है। प्रत्येक आसन पंद्रह सेकंदसे एक दो मिनिटतक कमसे कम करना उचित है, इसका वर्णन आसनोंके पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं।

ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर! मेरे ऊरुओंमें अर्थात् जंघाओंमें (ओजः) बडी शक्ति (अस्तु) होवे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौवर्ष की दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरी जंघाओंमें बडी शक्ति स्थिर रहे। मेरी जंघाएं और मेरे पांव बडे बलवान् और हृष्टपुष्ट होवें। किसी प्रकारकी अशक्तता मेरे पास न आवे।

अनुष्ठान—पूर्ववत् थोडासा जल जंघाओंपर मर्दन करके सब मनकी शक्तिकी धारणा अब जंघाओंपर कीजिए। इच्छासे वहांकी शक्तिका संवर्धन करनेका उत्साह मनमें धरिए और जंघाओंके अतिरिक्त किसी अन्य बातका चिंतन न करते हुए, तथा बलवान् हृष्टपुष्ट जंघाओंका स्मरण करके पूर्ववत् धारणा स्थिर करनेके पश्चात् निम्न आसनोंमेंसे कोई चार पांच आसन कीजिए। बद्धपद्मासन, पवन-मुक्तासन, श्वासगमनासन, पश्चिमतानासन, वातायनासन, ऊर्ध्वपद्मासन, धनुषासन, वामदक्षिणपादासन, एकपादशिरासन, द्विपादशिरासन, पादांगुष्ठासन, चक्रासन, अर्धवृक्षासन, त्रिकोणासन, उत्कटासन, पादहस्तभुजासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन इनमेंसे कोई चार पांच आसन इस समय कीजिए। इस कार्य के लिये बहुतसे आसन हैं। हरएक आसन प्रत्येक दिनमें करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक दिन उलट पुलट करके कोई चार पांच आसन किये जावें तो इस जंघास्थानकी निर्दोषता सिद्ध हो सकती है और वहांका बल बढ सकता है। इन आसनोंका संपूर्ण वर्णन आसनोंके पुस्तक में पाठक देख सकते हैं।

ॐ अरिष्टानि मेऽगानि
तनूस्तन्वा मे सह संतु ॥ ७ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! (मे अंगानि) मेरे सब अवयव (अ-रिष्टानि) कृश न होते हुए अथवा (अरिष्टानि) हृष्टपुष्ट होतेहुए (मे तन्वा सह) मेरे शरीरके साथ (तनूः) शरीरके सब अवयव उत्तम अवस्थामें (संतु) रहें।

मानसिक ध्यान—मेरे शरीरके सब अवयव और सब इंद्रिय उत्तम नीरोग, उत्तम बलवान् और उत्तम प्रकारसे हृष्टपुष्ट होकर मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक उत्तम अवस्थामें रहें, इतनाही नहीं, परंतु मेरा शरीर सौसे भी अधिक आयु प्राप्त करके उत्तम अवस्थामें अंततक रहे। किसी अवयव की अशक्तता मेरे शरीरमें न होवे।

अनुष्ठान—इस समय जलके छींटे सब शरीरपर दीजिए। जिससे सब शरीरमें एक प्रकार की चेतना आजायगी। पूर्व आसनों के कारण जो नस नाडियोंकी शुद्धि हुईथी उनमेंसे खूनका प्रवाह ठीक प्रकार चलेगा और

शरीरपर शीतजलके छींटे गिरनेसे नवीन चेतना प्राप्त होगी । इस समय सब शरीरके आरोग्यका ध्यान कीजिए और जिस प्रकारका सुडौल शरीर आप अपना बनाना चाहते हैं, उस प्रकारके सुडौल, सप्रमाण और सुंदर शरीरका ध्यान कीजिए और अपना शरीर वैसाही बनेगा ऐसा विश्वास रखिए । इस समय आपको निम्न प्रकारके आसन करना उचित है । सर्वांगासन, शीर्षासन, मत्स्येंद्रासन, ऊर्ध्वपद्मासन, शवासन, ऊर्ध्ववृक्षासन, चक्रासन, कूर्मासन, प्रार्थनासन, पूर्णपादत्रिकोणासन, अँगुष्ठासन, चतुरकोणासन, उपधानासन, कंदपीडनासन, द्विपाद-पार्श्वासन, इनमें से कोई चार पांच आसन इस समय कीजिए । और मनकी प्रबल इच्छाशक्तिद्वारा अपना बल बढ रहा है, अपना सब शरीर नीरोग और स्वस्थ हो रहा है, ऐसा कल्पनासे अनुभव कीजिए । कोई निर्बलताका विचार इस समय मनमें न रहे । तथा इस समय उत्साह, वीर्य, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम आदि की ही श्रेष्ठ भावना मनमें स्थिर रखिए । अपने आत्मासे उक्त प्रकारका सब बल अपने शरीर में विकसित होगा । इस बातको न भूलिए कि अपने आत्मामें उक्त शक्तियां विद्यमान हैं, आपही अपने मनके संकोच से आत्माकी शक्ति शरीरद्वारा प्रकाशित होनेमें रुकावट डालते हैं । इस लिये इस समय किसी कमजोरीकी कल्पना न करते हुए पांच मिनिटतक सब प्रकारके पूर्ण बलकी भावना मनमें स्थिर रखिए । यदि मनकी भावना स्थिर होगी और किसी प्रकारका विकल्प मनमें न उठेगा तो अपने आत्माकी शक्तिका आपको इसी समय अनुभव हो जायगा । इस लिये इस समय सब शुभ संकल्प मनमें स्थिर रखिए ।

इस प्रकार संध्योपासनाकी पूर्व तैयारी कीजिए । इस विधिको करनेसे शरीरके सब नसनाडियोंकी शुद्धि होगी, वहांके सब दोष और रोगबीज दूर होंगे और आपका आरोग्य बढनेमें सहायता होगी । इस समय आपका शरीर विविध आसनों में घुमाने के कारण हलका हुआ है ऐसा भास होने लगेगा । यह शरीरका हलकेपन ही आरोग्य का चिन्ह है । शरीरका भारीपन न केवल सुस्तिका परंतु रोगी होनेका चिन्ह है । इस प्रकार पूर्व तैयारी करनेके समय आप एक आसनपर बैठही नहीं सकते । जो बात

आप बैठकर कर सकते हैं उसको करनेके समय आपको बैठना उचित है, परंतु जो अन्यान्य आसन हैं वे एकासनमें एक ही स्थानपर बैठकर होही नहीं सकते। इसलिये इस पूर्व तैयारीकी समाप्तितक आपको अवश्यही आसनपर बैठना चाहिए ऐसा नहीं है। प्रत्येक मंत्रके योग्य अनुष्ठान करनेकेलिये जैसा रहना और हिलना उचित होगा वैसा करनेके लिये आपको अपना पहिला आसन छोडकर यथायोग्य प्रकारसे शरीरको घुमानाही होगा। केवल आसनोंका स्मरण करनेमात्रसे कोई लाभ नहीं होगा। इस कार्यके लिये अपने संध्या करनेके स्थानके पास एक कंबल बिछाकर रखेंगे तो भी बडी सुभिता हो सकती है। पूर्व तैयारी की समाप्ति होनेके पश्चात् जब आप संध्योपासनाका प्रारंभ करेंगे तब आपको अपना आसन छोडनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। सब प्रयोग उक्तप्रकार मनकी धारणा के साथ चित्तका किसी प्रकार विक्षेप न करते हुए यदि आप करेंगे तोही आपको सिद्धि प्राप्त हो सकती है। संशयित मन रखते हुए जो कुछ करेंगे उससे लाभ नहीं हो सकता। अस्तु। इस प्रकारकी पूर्व तैयारी होने के लिये आधे घंटेसे कुछ अधिक समय लगता है। इतना होनेके पश्चात् अब संध्योपासनाका प्रारंभ कीजिए।
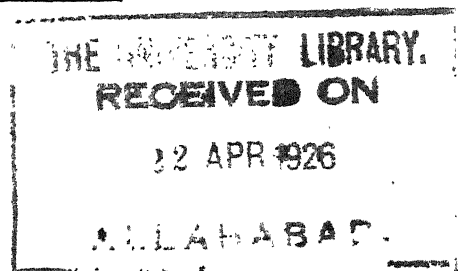
संध्योपासनाका प्रारंभ।
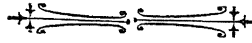
(३) मंत्राचमनम्।

ॐ शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवंतु पी॒तये॑ ॥
शं योर॒भि स्र॑वंतु नः ॥

ऋ. १०।९।४; य. ३६।१२

अर्थ—(देवीः आपः) दिव्य जल (नः) हम सब के लिये (शं) शांति (अभिष्टये) सहायता और (पीतये) संरक्षण करनेवाला (भवंतु) होवे। तथा वह जल (नः) हम सबके लिये (शं) शांति और (योः) रोगादिकों को दूर करनेकी शक्ति (अभिस्रवंतु) देवे।

मानसिक ध्यान—(आचमन करने तथा किसी अन्य समय जल सेवन करनेके कालमें श्रद्धामय विश्वाससे समझना चाहिए कि) यह जल बहुत दिव्य गुणोंसे युक्त है। और इसके सेवन करनेसे प्राणिमात्रके लिये शांति, तृप्ति, स्वास्थ्य, नीरोगता और रोग दूर करनेकी शक्ति प्राप्त हो सकती है। और सब प्रकारका कल्याणही कल्याण हो सकता है। इसलिये इसके सेवन करनेसे मुझे भी आरोग्य, आनंद, बल, दीर्घ आयुष्य, तेज, वीर्य, उत्साह, आदि निःसंदेह प्राप्त होगा। जल (आपः) प्राप्त करने योग्य है, यही (देवीः) देवकी शक्ति है। सर्वव्यापक परमेश्वरकी व्यापक, शांतिमय और पवित्र शक्ति जलरूपसे मुझे और सब प्राणियोंको प्राप्त हो रही है। ईश्वरकी शांतिका मैं इसमें अनुभव कर रहा हूं। निःसंदेह इसके सेवनसे मुझे (शं) शांति प्राप्त होगी। इस जल की सहायतासे सब (अभिष्टये) अभीष्ट शुभ गुण मुझे प्राप्त हो सकते हैं। इसीसे दुष्ट विकारोंका शमन होगा। सब प्रकारका (पीतये) संरक्षण अर्थात् रोगादिकोंसे बचाव इसी जलसे हो सकता है। यह जल स्वास्थ्य और विषमताके प्रतिकार की शक्ति मेरे शरीरमें स्थापन कर सकता है।

हे ईश्वर! तेरी अद्भुत शक्ति है कि जिसके द्वारा तूने इस प्रकारका शुभ गुणकारी जल उत्पन्न करके हम सब प्राणिमात्रोंपर अपार दया की है। इसी तेरी दया का वर्षाव हम सबपर सदैव होता रहे।

अनुष्ठान—इस मंत्रका उच्चारण और उक्त ध्यान करनेके पश्चात् जलका आचमन कीजिए और जलकी शांतिका अनुभव अपने अंदर कीजिए।

तीनवार आचमन करनेके पश्चात् निम्न मंत्रोंका उच्चारण करके **'इंद्रिय-स्पर्श'** करना उचित है। संध्योपासनाकी पूर्व तैयारीमें 'अंगस्पर्श' किया है। अब यहां 'इंद्रिय स्पर्श' करना है। स्थूल अवयवोंका नाम 'अंग' है और आत्माकी सूक्ष्म शक्तियोंका नाम 'इंद्रिय' है। अंगस्पर्शके मंत्रोंद्वारा स्थूल अवयवोंकी शक्तिका उत्कर्ष करनेका अनुष्ठान किया गया है। अब इस इंद्रियस्पर्शद्वारा अवयवोंके अंदरकी सूक्ष्म आत्मशक्तियोंका विकास करना है। पाठक इस बात को न भूलें। नहीं तो अंगस्पर्श और इंद्रियस्पर्श का उद्देश ही प्रतीत नहीं हो सकता। अंगस्पर्शके मंत्रोंके साथ स्थूल शरीरकी स्थूल शक्तिके ऊपर मनकी धारणा करके उसका विकास करनेका यत्न हुआ है। अब अपने सूक्ष्म शरीर में विद्यमान अनंत सूक्ष्म शक्तियोंका विकास उसी प्रकार मनकी धारणाद्वारा करना है। **इच्छाशक्ति की प्रेरणा करनेके विना किसी शक्तिका विकास हो ही नहीं सकता,** यही कारण है कि, सालोंसाल संध्याके मंत्र उच्चारते हुए भी संध्योपासनाके लाभसे लोक वंचित ही रहते हैं, और कह देते हैं, कि संध्या करनेसे हमें कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिये पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धरना उचित है, कि अनुष्ठान के विना केवल मंत्रोच्चार मात्रसे ही पूर्ण फल कभी प्राप्त नहीं हो सकता। अस्तु। अब निम्न प्रकार अपने इंद्रियोंकी सूक्ष्मशक्तियों पर अपने मनकी दृढ धारणा करके निम्न साधन का अनुष्ठान कीजिए—

(४) इंद्रियस्पर्शः ।

ॐ वाक् । वाक् ॥ १ ॥

अर्थ—हे (ॐ) ईश्वर! मेरी स्थूल और सूक्ष्म वक्तृत्वशक्ति यश और बल से युक्त होवे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरे मुख में उत्तम प्रभावशाली वक्तृत्व शक्ति स्थिर रहे । तथा मेरी स्थूल और सूक्ष्म वाचामें विलक्षण बल सदा निवास करे और मेरे वक्तृत्वसे सदा ही यशकी वृद्धि होती रहे । अर्थात् मेरे वक्तृत्वके प्रभावसे मेरा यश बढे और दूसरोंको यशका मार्ग विदित होवे । यशकी और शक्तिकी हानि करनेवाला कोई शब्द मेरे मुखसे न निकले ।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकार थोडासा जलका स्पर्श मुखपर कीजिए । और उक्त भावना मनके अंदर दृढ धारण कीजिए । अपने मनकी इच्छाशक्ति इस समय अपनी वक्तृत्वशक्तिमेंही स्थिर कीजिए और किसी अन्य बातका स्मरणतक न कीजिए । ऐसा करनेसे अपने मनकी सब शक्ति अपने वागिंद्रियमें जाकर वहांका स्वास्थ्य ठीक करेगी और उस इंद्रियकी शक्ति बढाएगी । इंद्रियस्पर्श के प्रत्येक मंत्रमें 'यशो-बलं' की अनुवृत्ति है । बल के साथ यश भी चाहिए । अंगस्पर्शके मंत्रोंमें 'अरिष्ट' अर्थात् स्वास्थ्य और आरोग्य तथा 'बल' और 'ओज' बढाने की सूचना मिली है । वहांके प्रत्येक मंत्रमें 'अरिष्ट, बल, ओज' की अनुवृत्ति है । केवल स्वास्थ्य और केवल बल बढनेसे पर्याप्ति नहीं हो सकती, जबतक उसके साथ 'यश' न बढे । इंद्रियस्पर्शके मंत्रोंका यही मुख्य उद्देश है, कि हरएक उपासकका विचार 'यश' की ओर खींचा जावे । उपासक यहां अपनी वक्तृत्व शक्तिमें बल बढानेकी इच्छा करे, और अपना भाषण यशस्वी सुविचारोंसे परिपूर्ण बनानेका यत्न करे । बुरे शब्दोंके प्रयोगसे यशकी हानि होती है, इसलिये अपने भाषणमें यदि कोई बुरा शब्द प्रयुक्त होता हो अथवा अपने वक्तृत्वमें कोई अन्य प्रकारका दोष हो तो उसको अपनी इच्छाशक्तिसे दूर करनेका यत्न इस समय कीजिए । इच्छाशक्तिकी प्रबलता जिस बातमें होगी उस बातकी सिद्धि प्राप्त होती है । इसलिये जो उपासक अपने वक्तृत्वमें वीर्य उत्पन्न करना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपने भाषण को बलवान् और ओजस्वी तथा दोषरहित करनेका यत्न करें । जिस सूक्ष्म इंद्रियमें शब्दका प्रथम स्फुरण होता है वहांही निर्दोष शब्दका स्फुरण होवे । बुरे शब्दकी प्रेरणा उत्पन्न होनेके पश्चात् उसको रोकना योग्य है, परंतु यदि बुरे शब्दकी प्रेरणाही उत्पन्न न हुई तो सबसे अच्छा है । बुराई पैदा करके उसका

नाश करनेकी अपेक्षा मूलमें बुराई पैदाही न हुई तो सबसे उत्तम है। इसलिये इस समय यशस्वी बलवान् वक्तृत्वकाही चिंतन कीजिए। इसके पश्चात्—

ॐ प्राणः प्राणः ॥ २ ॥

अर्थ—मेरा प्राण बलवान् होकर यशके साथ संयुक्त होवे।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी पूर्ण आयुकी समाप्तितक मेरे दोनों नासिकाओंके द्वारा संचार करनेवाला प्राण उत्तम बलवान् होकर यशके मार्गमें जीवन व्यतीत करनेका उत्साह उत्पन्न करे।

अनुष्ठान—जीवन और प्राण एक दूसरेसे पृथक् रह नहीं सकते। अपना जीवन बल उत्साह और वीर्यसे युक्त करनेकी सूचना यहां मिलती है, तथा अपने संपूर्ण जीवनमें सर्वत्र विजय प्राप्तिपूर्वक बडा यश संपादन करनेका निश्चय करना हरएक को उचित है। प्राणके बलपर ही दीर्घ जीवन अवलंबित होता है इसलिये इस मंत्रका ध्यान करतेहुए निम्न प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करना योग्य है। प्राणायाम करनेके समय अपनी इच्छाशक्तिमें यह विचार स्थिर रखना चाहिए कि मैं प्राणायामादि योगसाधनद्वारा नीरोगतापूर्वक दीर्घजीवन अवश्य प्राप्त करूंगा और सब विघ्नोंको दूर करके अपना और जनताका हित करनेके महान् पुरुषार्थ अवश्य करूंगा। इस समय करने योग्य चार प्रकार के प्राणायाम हैं। **(१) एकपाद् प्राणायाम**—जितनी देरमें पूरक किया जायगा, उतनी ही देरमें कुंभक और उसके सवागुणा समय में रेचक करनेसे एकपाद प्राणायाम होता है। **(२) द्विपाद् प्राणायाम**—जितने समय में पूरक किया जायगा उसके दुगुणी देरमें कुंभक और उसके डेढगुणा समय में रेचक करनेसे द्विपाद् प्राणायाम सिद्ध होता है। **(३) त्रिपाद् प्राणायाम**—जितनी देरमें पूरक होगा उससे तीन गुणे समयमें कुंभक और पौने दो गुणे समयमें रेचक करनेसे त्रिपाद् प्राणायाम सिद्ध होता है। **(४) चतुष्पाद् प्राणायाम**—जितने काल में पूरक किया जायगा उसके चार गुणा समयमें कुंभक और दुगुणे समयमें रेचक करनेसे इसकी सिद्धि होती है। प्रत्येक दिन आरंभमें ये चारों प्राणायाम चार, तीन, दो और एक इस प्रमाणमें करना उचित है। क्रमपूर्वक करनेसे कुंभक का अभ्यास बढ जाता है। प्रथम दिन

एकपाद प्राणायाम चारवार, द्विपाद प्राणायाम तीनवार, त्रिपाद प्राणायाम दोवार और चतुष्पाद एकवार कीजिए। प्रत्येक पंद्रह दिनके पश्चात् प्राणायामकी एक एक संख्या बढाइए इस प्रकार प्रायः एक वर्षकी अवधिमें एकपाद प्राणायाम वीस अथवा पचीस वार करनेकी योग्यता प्राप्त हो सकती है। जब पचीसवार पहिला प्राणायाम होने लगेगा, तब एकपाद प्राणायाम बंद करके आगेके तीनही करते रहिए। अब पूर्व प्रकार ही प्रत्येक पंद्रह दिनोंमें प्रत्येक प्रकारके प्राणायामकी संख्या एक एक बढानेका क्रम वैसा ही रखना चाहिए। इस प्रकार दूसरे वर्षकी समाप्तितक शेष तीनोंमेंसे दूसरे प्रकारके प्राणायामकी संख्या चालीसतक होने लगेगी। इस समय द्विपाद प्राणायाम बंद करके केवल अंतके दोही प्राणायाम करते रहिए। पूर्वोक्त प्रकार पंद्रह दिनोंमें एक संख्या बढातेहुए तृतीय वर्षकी अवधिमें तीसरे प्रकारके प्राणायाम की संख्या साठतक सुगमतासे हो सकती है। इस समय त्रिपाद प्राणायाम बंद करके केवल चतुष्पाद प्राणायामकाही अभ्यास करना योग्य है। यही चतुष्पाद प्राणायाम मुख्य और पूर्ण प्राणायाम है। अन्य प्राणायाम इसकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये साधन मात्र हैं। प्राणका स्थान फेंपडोंमें है। फेंपडोंमें बल लानेके लिये उन साधक प्राणायामोंकी आवश्यकता है। कई लोक हठसे क्रमपूर्वक प्राणायाम न करते हुए एकदम चतुष्पाद प्राणायाम बलात्कार से करने लग जाते हैं, ऐसा अविचार करनेसे छातीमें तथा अन्य इंद्रियोंमें विविध प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होतीं हैं। जब व्याधियां उत्पन्न होतीं हैं, तब वे कहते हैं कि प्राणायामसे यह हानि होगई; परंतु वास्तवमें अविचार के कारण व्याधि होती है न की प्राणायाम के कारण। इस लिये यहां उपासकोंको सावधान किया जाता है कि वे क्रमपूर्वक शनैःशनैः प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन किया करें। एक वर्षकी सिद्धि दो वर्षोंमें होगई तो कोई हानि नहीं है, परंतु सिद्धिकी लालचसे शीघ्रता और हठ करने से बडी हानि हो सकती है। सात्विक भोजन करनेवालोंको प्राणायाम से बडा लाभ होता है, परंतु जो मांसाहार आदि करते हुए, तथा शराब, तमाखू, चाय, काफी आदि पदार्थों का सेवन करते हुए प्राणायाम करने लगते हैं, उनका बडा नुकसान होता है। इस लिये उपासकोंको उचित है, कि वे सब प्रकारके

दुर्व्यसन छोड देवें और शुद्ध सात्विक भोजन करने लगें तथा ब्रह्मचर्य-पूर्वक प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन करें। जो ऐसा करेंगे उनको आनंद ही आनंद प्राप्त होगा, और प्राणायाम के ही समय एक प्रकारके अद्वितीय अमृतरसका स्वाद मुखमें चलता रहेगा। और क्रमशः अन्य लाभ भी होते रहेंगे॥ प्राणायाम की संख्याके विषय में ऊपर लिखाही है। अब प्राणायामके समयकी अवधिके विषयमें थोडासा लिखना उचित है। नासिकाद्वारा श्वास अंदर लेनेके क्रिया को 'पूरक' कहते हैं, प्राणको अंदर स्थिर रखनेके अभ्यासको 'कुंभक' कहते हैं और नासिकाद्वारा फिर बाहिर छोडनेको 'रेचक' कहते हैं। 'पूरक—कुंभक—रेचक' मिलकर एक प्राणायाम होता है। पूरक—कुंभक—रेचक की अवधिकी न्यूनाधिकतासे विविधप्रकारके प्राणायाम बन जाते हैं, जिनमेंसे चार प्राणायाम ऊपर दिये हैं। और येही प्रतिदिन करने योग्य हैं। इनमें भी चतुष्पाद प्राणायाम सबसे मुख्य और पूर्ण है, और अन्य उसकी तैयारी के साधक हैं। 'पूरक—कुंभक—रेचक' की अवधिका प्रमाण प्रथम आरंभमें अंकोंकी गिनतीसे करना योग्य है। जैसा—प्रथम दिन एकपाद प्राणायाम छे अंकोंकी गिनतीतक पूरक, छे अंकोंकी गिनतीतक कुंभक और आठ अंकोंकी गिनतीतक रेचक करना। इसीदिन चतुष्पाद प्राणायाम निम्न प्रकार होगा—छे अंकोंसे पूरक, चोवीस अंकोंसे कुंभक और बारह अंकोंसे रेचक। इसके बीचके प्राणायाम इसी हिसाबसे पाठक समझ सकते हैं। स्पष्ट होनेके लिये प्रथम दिनका प्रमाण नीचे देता हूं—

		पू. कुं. रे.				
एक पाद	प्राणायाम	—६×६×८	अंकतक		चार	प्राणायाम।
द्विपाद	,,	—६×१२×९	,,	,,	तीन	,,
त्रिपाद	,,	—६×१८×१०	,,	,,	दो	,,
चतुष्पाद	,,	—६×२४×१२	,,	,,	एक	,,

प्रति पंद्रह दिनोंमें एक एक अंककी अवधि बढानेकी योग्यता प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार साधारणतया एक वर्षमें प्राणायाम की अवधि निम्नप्रकार हो सकती—

		पू. कुं. रे.				
एक पाद प्राणायाम		—२४×२४×३०	अंक	अवधिके	२४	प्राणायाम
द्विपाद	,,	—२४×४८×३६	,,	,,	१८	,,
त्रिपाद	,,	—२४×७२×४२	,,	,,	१२	,,
चतुष्पाद	,,	—२४×९६×४८	,,	,,	६	,,

जब आपका इतना अभ्यास होगा तब आप चतुष्पाद प्राणायाम करनेके समय (१) एक गायत्री मंत्रसे पूरक, (२) चार गायत्री मंत्रसे कुंभक और (३) दो गायत्री मंत्रसे रेचक करके समंत्रक प्राणायाम कर सकते हैं। गायत्री मंत्रमें २४ अक्षर हैं इसलिये ऐसा करना इस समय सुगम होगा। परंतु प्रारंभमें अंकोंके हिसाबसे करना सुगम है। विना हिसाबके यदि करेंगे तो आपको अपनी योग्यताका पता नहीं लग सकता। इसके अतिरिक्त यदि कोई अन्य रीति आप धूंड सकेंगे तोभी कार्यभाग हो सकता है। तात्पर्य इतनाही है कि क्रमपूर्वक शनैःशनैः अभ्यास होना चाहिए।

जब दो तीन वर्षोंके अभ्याससे आप पूर्ण प्राणायाम लगातार विना विश्रामके ८० तक कर सकेंगे, तब समझिए कि आपका अभ्यास उत्तम होगया है। गायत्री मंत्रसे एक पूर्ण प्राणायाम करनेके लिये डेढ मिनिट लगता है। इस हिसाबसे ८० प्राणायामके लिये दो घंटेका समय लगेगा। सर्व साधारण व्यावहारिक जनोंके लिये इतना समय प्रत्येक संध्योपासना के समय निकालना कठिन होगा। ऐसी अवस्थामें प्राणायामों की संख्या कम करना योग्य है। परंतु बीससे कम नहीं होना चाहिए। संख्याकी न्यूनतासे सिद्धिमेंभी न्यूनता होगी ही, इसका कारण स्पष्टही है।

इसप्रकार प्राणायामोंकी संख्या और प्राणायामकी अवधिका विचार होगया। जिसके पास जितना समय होगा वह उतना अभ्यास करे। जो जितना अभ्यास करेगा उसको वैसा लाभ होगा। प्रारंभमें बहुत अभ्यास नहीं करना चाहिए, परंतु एक वर्षके अभ्याससे फिर अपनी शक्ति के अनुसार करनेमें कोई हर्ज नहीं है। प्राणायाम करनेके समय मनमें यह भावना स्थिर रखना चाहिए कि विश्वव्यापक परमेश्वरीय प्राणशक्ति श्वासके साथ मेरे अंदर जा रही है और मैं उस अमृतरूप प्राणका पान कर रहा हूं

तथा कुंभकद्वारा उस प्राणको मैं अपने शरीर के प्राणमें स्थिर कर रहा हूं और रेचकद्वारा शरीरस्थ सब मलोंको बाहर फेंक रहा हूं । इस प्रकार मेरे अंदर प्रत्येक प्राणायामके साथ नवीन दिव्य जीवनका संचार हो रहा है और शरीरके दोष कम हो रहे हैं । इस भावनाकी मनमें स्थिरता करनेसे अपूर्व प्रसन्नता प्राप्त होती है ।

प्राणायाम करनेके समय विशेषतः अपना शरीर समसूत्रमें रखना चाहिए। पीठके मणके, गला और सिर सीधा समसूत्रमें रखना चाहिए । दिवार के साथ आप बैठेंगे तो पीठ, सिरका पीछला भाग और चूतरों का पीछला भाग दिवारके साथ स्पर्श करे । गलेको आगे झुकने नहीं देना चाहिए । पीठके मणकोंमेंसे बुद्धिका प्रवाह चल रहा है । पीट समसूत्रमें रखनेसे और उक्त प्रकार प्राणायाम करनेसे बहुत लाभ हो सकते हैं । बुद्धि और उत्साह बहुत बढता है और आयुष्य की वृद्धिभी होती है । प्राणायामसे सब शरीरके अवयव और मन आदि इन सबकी प्रफुल्लता होती है । और जब प्राणायामद्वारा सब शरीर निर्मल होता है, तब पूर्ण नीरोगताकी प्राप्ति हो सकती है । प्राण और मन ये दोही शक्तियां सब शरीरमें मुख्य हैं । इनकी स्वाधीनता प्राणायामसे होती है । इसीलिये कहते हैं कि योगकी क्रियाओंमें प्राणायाम सबसे प्रमुख है । अस्तु । इसप्रकार प्राणायामका अभ्यास करनेके पश्चात् निम्न मंत्र पढिए—

ॐ चक्षुः । चक्षुः ॥ ३ ॥

अर्थ—मेरा नेत्र इंद्रिय यश और बलसे युक्त होवे ।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरे दोनों नेत्र तथा स्थूल सूक्ष्म नेत्र-इंद्रिय उत्तम बलवान् होकर यशकी प्राप्तिके कर्म करनेमें सुफलता प्राप्त करे । मेरेसे नेत्रोंद्वारा कोई ऐसा कर्म न होवे कि जिससे नेत्रोंकी दुर्बलता अथवा किसी प्रकारसे मेरे यशकी हानी हो सके ।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकार थोडासा शीत जल दोनों नेत्रोंको लगाइए और प्रेमसे अपने नेत्रोंपर से दोचार बार हाथ घुमाइए । इस समय अपने मनकी सब शक्ति नेत्रोंमें प्रेरित कीजिए और पूर्ण उज्वल नेत्रकी

अवस्थाका चिंतन कीजिए। जिस प्रकारकी उत्तम दृष्टि आप चाहते हैं उस प्रकारकी दृष्टि उत्पन्न हो रही है ऐसी भावना मनमें रखिए। और अपने दृष्टिके सब दोष दूर होने लगे हैं ऐसा विचार मनमें स्थिर कीजिए। विकल्प न उत्पन्न हुआ और शुभ विचार की स्थिरता हो गई तो दृष्टि उज्वल होने लगती है इस समय निम्न प्रकार अनुष्ठान कीजिए। (१) **नासाग्र-दृष्टि**=अपनी नासिकाके अग्रभागमें दोनों आंखोंकी दृष्टि वेधक रीतिसे लगाना चाहिए। जितनी देर आप दृष्टि स्थिर रख सकेंगे उतनी देर स्थिर रखिए। किसी दूसरे पदार्थका कोई विचार मनमें न लाइए। जब दृष्टि थक जायगी तब एकदम उस दृष्टिको किसी दूरके पदार्थ पर स्थिर कीजिए। यह पदार्थ अपने कमरे में हो अथवा किसी बाहेरके दृश्य में हो। एक दो मिनिट वहां स्थिर करके फिर आप अपनी दृष्टिको—(२) **भ्रूमध्य-दृष्टि**=कर सकते हैं। अपने दोनों भौंवोंके बीच के स्थान पर अपने नेत्रों की वेधक दृष्टि स्थिर करना इस समय उचित हैं। नासिकाग्र दृष्टिसे भ्रूमध्य दृष्टि थोडीसी कठिन है। दोनों स्थानोंमें दृष्टि स्थिर करना प्रथम अवस्थामें कठीन प्रतीत होता है, परंतु दो तीन महिनोंके निरंतर अभ्यास से दृष्टि स्थिर होने लगती है। छे मासके अभ्यास से स्थिरता का अच्छा अनुभव आने लगता है। तथा एक वर्षके निरंतर अभ्यास से अच्छी प्रकार दृष्टिकी स्थिरता होने लगती है। इस प्रकार दृष्टिकी स्थिरतासे दृष्टिमें एक प्रकारका वीर्य आता है, दृष्टि वेधक बनती है और नेत्रोंकी चंचलता हटने लगती है। जो उपासक मनकी स्थिरता के साथ इसका अभ्यास प्रतिदिन करेंगे, उनको एक वर्षके अंदर चित्तकी स्थिरता का अनुभव हो जाता है, और जागृतिका भान नष्ट होने और उच्च भूमिका का दर्शन होनेकाभी अनुभव प्राप्त हो सकता है। समाधि की यह पूर्व तैयारी है, इस लिये पाठक इस अनुष्ठान का उपहास न करते हुए विश्वास से करते रहेंगे, तो उनको भी स्वयं अनुभव हो जायगा। (३) **दृष्टि की स्थिरता**—इस समय दृष्टिकी स्थिरता करने का भी अभ्यास करना उचित है। अपने आसन से कुच्छ थोडे अंतर पर रखे हुए किसी तेजस्वी चमकीले पदार्थ पर दृष्टिकी स्थिरता करने का अभ्यास कीजिए। कुछ देर आप ऐसी दृष्टि स्थिर करेंगे तो आपको ऐसा भान होगा कि सिवाय उस

पदार्थ के और कोई पदार्थ वहां नहीं है । जितनी देरतक आप इस प्रकार स्थिर चित्त होकर बैठ सकेंगे उतनी वेधकता आपकी दृष्टिमें उत्पन्न होगी। दूसरेके चित्तपर प्रभाव जमानेकी योग्यता इस प्रकार प्राप्त हो सकती है। मानसिक इच्छाशक्तिद्वारा दूसरोंके रोग दूर करनेकी योग्यता इस अनुष्ठानसे आपकी दृष्टिमें आसकती है ॥ पूर्वोक्त तीनों प्रकार के अभ्यास से 'योगनिद्रा' का भी उपासकों को अनुभव प्राप्त हो सकता है। 'योग-निद्रा' की अवस्था समाधिसे निचले दर्जेपर है परंतु इस से अभौतिक स्वास्थ्यकी प्राप्ति हो सकती है। जिस भावनाकी मनमें स्थिरता करके योगनिद्रा प्राप्त होगी उसी भावनाका उस समय साक्षात्कार हो सकता है अर्थात् आरोग्य की भावना मनमें स्थिर करके योगनिद्रामें जानेसे शरीरके रोग निवृत्त हो सकते हैं। यह अनुभव की बात है इस लिये विना संशय उपासक उक्त दृष्टियोंका अभ्यास कर सकते हैं। अंगस्पर्शके मंत्रोंमें कहे दृष्टिविषयक अभ्यास के पश्चात् इस अभ्यासको करना है। आठ वर्षकी आयुमें इस प्रकार का अभ्यास प्रारंभ होनेसे दृष्टिकी सब प्रकारकी कमजोरी दूर होतीहै और वृद्ध अवस्थामें भी उपनेत्रों(ऐनक)की आवश्यकता नहीं होती । जिस किसी आयुमें इस अभ्यासको योजना-पूर्वक करते और शनैःशनैः बढाते जानेसे बडा लाभ होता है।

ॐ श्रोत्रं । श्रोत्रम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मेरे श्रवण इंद्रिय यश और बलसे युक्त हो।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी पूर्ण आयुकी समाप्तितक मेरा श्रोत्र इंद्रिय उत्तम बलवान् रहे और यश बढानेके श्रेष्ठ कार्यमें सदा तत्पर रहे। मैं अपने कानोंसे कभी बुरे शब्द नहीं सुनूंगा तथा किसी अन्यप्रकार अपनी श्रवणशक्तिका दुरुपयोग नहीं करूंगा। तथा मैं कोई ऐसा आचरण नहीं करूंगा कि जिससे मेरी श्रवणशक्ति क्षीण हो सके।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकारसे कानोंको थोडासा जलस्पर्श कीजिए और अपने मनकी धारणा अपने श्रवण इंद्रियपर कीजिए। यदि आपकी श्रवणें-द्रियमें कोई क्षीणता अथवा व्याधिकी दुर्बलता अथवा अपूर्णता हो तो

उसको दूर करनेके लिये इस समय आज्ञा दीजिए। आपका मन यदि आपके स्वाधीन होगा तो आपकी आज्ञाका तत्काल पालन करेगा। और यदि स्वाधीन न होगा तो उसको निश्चय से स्वाधीन करनेका इसी प्रकार धारणासेही प्रयत्न कीजिए। अब आप पूर्ण और उत्तम श्रवणशक्तिकी भावना मनमें धारण कीजिए और मनको इधर उधर न दौडाते हुए वैसा ही आपका श्रवण इंद्रिय है, और उसके सब दोष दूर होगये हैं, तथा उसीप्रकार पूर्ण आयुकी समाप्तितक अपना श्रवण इंद्रिय परिपूर्ण अवस्थामें रहेगा, ऐसा संकल्प दृढ रखिए। इस समय कोई दूसरा विकल्प मनमें न आने दें। ऐसा अभ्यास प्रति दिन करनेसे बडाही लाभ होता है।

ॐ नाभिः ॥ ५ ॥

अर्थ—मेरे नाभिस्थानकी सब प्रकारकी समानशक्ति बल और यशसे युक्त हो।

मानसिक ध्यान—मेरे नाभिस्थानमें समान नामक प्राण है उसके अंदर उत्तम बल प्राप्त होवे। इस समान-प्राणसे सब शरीरकी समानता प्राप्त होती है और सब प्रकारकी विषमता दूर होती है। मेरी समान शक्ति उत्तम बलवान होकर मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक अपना कार्य उत्तम प्रकार करनेमें समर्थ होवे और इस शक्तिसे मैं युक्त होकर यशसे पूर्ण यशस्वी बनूंगा।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकार सीधे हाथमें थोडासा जल लेकर नाभि और उसके आसपासके चारों ओर के छह छह अंगुलियोंतक पेटके भागपर शनैः शनैः लगाईए। लगानेका प्रकार भी ध्यानमें रखिए। नाभिस्थानपर थोडासा जलस्पर्श कीजिए और उसको मध्य मानकर नाभिके चारों ओर वर्तुल खींचतेहुए गीला हाथ घुमाइए। सीधे तरफ से बायें तरफ वर्तुल खींचा जावे और प्रारंभमें छोटा और पीछेसें बडा खींचा जावे। प्रारंभमें विना बलसे और पश्चात् बलके साथ हाथ घुमाकर सब जल वहां शुष्क किया जावे। जल इतना लेना चाहिए कि सब पेटके ऊपर अच्छी प्रकार लग सके तथापि नाभिमें बहुत जल नहीं लगाना चाहिए। इस समय पूर्वोक्त मानसिक ध्यान करके निम्न अनुष्ठान कीजिए=(१) नाभिस्थान

का अभ्युत्थान—नाभिके समेत सब पेटको ऊपरकी पंसलियोंके अंदर खींचनेका यत्न कीजिए। ऐसा करनेसे पेट पलियोंमें चला जायगा और नाभिका स्थानभी दो तीन अंगुलियां ऊपर चला जायगा। इस अवस्थामें कमसे कम एक मिनिटतक अथवा जितनी अधिक देर आप बैठ सकें उतना बैठिए। इस अभ्युत्थानका अभ्यास प्रतिदिन पांच अथवा दश मिनिट करना उचित है। इससे क्षुधा प्रदीप्त होती है और पेटकी कमजोरी दूर होती है तथा समान प्राणकी अवस्था बलवान होने लगती है। यह अभ्युत्थानका अभ्यास साधारण अवस्थामें भी बडा लाभदायक है। (२) नाभिमांस—स्तंभन—पूर्वोक्त प्रकार नाभि और पेट को ऊपर पंसलियोंमें खींच लीजिए और पश्चात पेटके दांये बांये भागको पीछेही रख कर, बीचमें मांसका स्तंभसा बनाकर आगे बढा दीजिए। पंसलियोंसे प्रारंभ होकर नाभिके नीचे छः अंगुलियों तक बराबर एक स्तंभ जैसा खडा होगा, जिसकी चौडाई तीन अंगुलियां और ऊंचाई बारह चौदह अङ्गुलियोंतक, जितना पेटका विस्तार होगा, होगी। इस प्रकार थोडा थोडा अभ्यास कीजिए। (३) नौलि—पेटके समेत नाभिस्थान के सब भाग को दाहिनेसे बाएं और बाएं से दाहिने शीघ्र गतिसे घुमाना। इस समय पालथी लगाके बैठना और कंधोंको नीचे नमाना चाहिए। अपने आसनपर बैठतेहुए दोनों हाथ सामने जमीनपर रखिए और इस नौलीको कीजिए। (४) इससमय नाभिस्थानके भागको गोल भंवर के समान भी घुमानेका यत्न कीजिए। ये चार अभ्यास इस समयके अनुष्ठानमें करना उचित है। यदि समय हो तो इन चारोंको कीजिए, और समयके अभावमें कोई एक तो अवश्य कीजिए। इस अभ्याससे जठर अग्निका दीपन होता है। भूख बहुत लगने लगती है और भूख लगनेसे सब शरीरका आरोग्य भी प्राप्त होता है। जो लोक क्षुधा प्रदीप्त करनेके लिये विविध औषधियां लेते हैं और अपने शरीरमें विष मोल लेकर डालते हैं, उनको उचित है कि वे इस विधिको करते जांय। विना औषधि सेवन करनेके उन का अग्नि प्रदीप्त हो जायगा और स्वास्थ्य भी ठीक होगा। अस्तु। इस अभ्यासको करनेके समय अपनीं सब इच्छाशक्ति पेट और नाभिस्थानमें प्रेरित करनी चाहिए और उसको जाठराग्निकी प्रदीप्तिमें लगाना चाहिए। तथा मनमें यह भाव धारण करना

चाहिए कि मैं इस विधिके अभ्याससे नाभिस्थानके समान प्राणको उत्तम बलवान बनाकर अवश्यही दीर्घायु प्राप्त करूंगा । और किसी प्रकारके विघ्नों से निरुत्साहित नहीं होऊंगा ।

ॐ हृदयम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मेरा हृदय बलवान् और यशस्वी होवे ।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरा हृदय उत्तम बलवान और अपना कार्य करनेमें सब प्रकार से योग्य होवे । मेरे हृदयके सबही भाव ऐसे शुद्ध और प्रेमपूर्ण हों की जिनसे प्रेरित होता हुआ मैं शुभ पुरुषार्थ करता हुआ उत्तम यशका भागी हो जाऊं । मेरे अंतःकरणमें कोई ऐसा भाव न आवे कि जो व्यक्ति और जनताके घातका कारण हो सके तथा सब शुद्ध विचारोंका प्रवाह मेरे अंतःकरणसे सदा चलता रहे ।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकार सीधे हाथपर थोडासा जल लेकर हृदय-पर वर्तुल गतिसे मल लीजिए और मनमें शुद्ध और प्रेमपूर्ण भाव धारण करके अपना सीधा हाथ अपने हृदयपर रखिए कि जहां अंदर हृदयकी क्रिया चलती रहती है। मन शांत रखेंगे तो आपके हाथको अपने हृदयके चलनेकी गतिका भी इस समय ज्ञान हो जायगा । इस समय मनमें परमात्माकी शुद्ध भक्ति और सब जनताके कल्याणका प्रेममय शुद्ध भाव रखिए । सब बुरे भावोंको दूर रख कर सब अच्छे भाव हृदयमें धारण कीजिए । किसीके अथवा अपनेभी बुरे भावोंका इस समय चिंतन न कीजिए । शुभ कल्पनाएं कीजिए और जिस शुभ गुणकी आप कल्पना करेंगे उसके पराकाष्ठाकी कल्पना कीजिए । शुभ गुणके पराकाष्ठाकी कल्पना ही परमेश्वरकी कल्पना है यह न भूलिए । एक एक शुभ गुणकी पराकाष्ठा मनमें स्थिर करनेका यत्न कीजिए, विशेषतः जो जो निर्बलता आपमें होगी, उस निर्बलताके विरुद्ध श्रेष्ठ सद्गुण की कल्पना कीजिए । अर्थात् अपनी निर्बलताका स्मरण न करते हुए केवल उस श्रेष्ठ गुणकी परमावधिकी कल्पना अपने मनमें स्थिर करनेका यत्न कीजिए कि जो गुण आपकी निर्बलताका विरोधी है । यदि आपमें ब्रह्मचर्यका अभाव होगा तो वीर्यक्षीणताकी कल्पना न करते हुए

पूर्ण ब्रह्मचर्यका अथवा पूर्ण ब्रह्मचारीके बलका स्मरण कीजिए। उस विचार से मनको ऐसा परिपूर्ण कीजिए कि उस शुभ विचारके जलसे अपना मन पूर्णतासे भर जावे। इसी प्रकार सब अन्य शुभगुणोंके विषयमें समझना उचित है। अपने हृदयपर हाथ रखकर मनमेंही कहिए कि "यही आत्माका स्थान है, तेजस्वी अंगुष्ठ मात्र पुरुष यहां निवास कर रहा है, वही मैं हूं। मैं शरीरसे भिन्न और आत्माही हूं। मैं तेजस्वी हूं। यही आत्माकी नगरी है। यही दिव्यपुरी है। यही स्वर्गधाम है। मैं शुद्ध होकर इस नगरीमें प्रविष्ट होऊंगा। बुरी भावनाओंके प्रबल होनेके कारण मुझे इस अयोध्यानगरीसे दूर जाकर अरण्यवास लेना पडा है। दुष्ट भावनारूप राक्षसोंका नाश करके और शुभविचारोंको पास करके मैं यशस्वी बनकर अपनी राजधानी में अवश्य विराजमान होऊंगा। यह हृदय ही मेरी राजधानी है। मैं इस स्वर्गभवनमें योगसाधनद्वारा अवश्य प्रवेश करके वहांके तेज और अमृतका अवश्यही अनुभव लूंगा। यही देवोंकी नगरी है, यही स्वर्ग है। और यही "मानस-सरोवर" है, इसीमें मेरे हंस-रूप प्राण क्रीडा कर रहें हैं। इसी स्थानमें सब योगी भक्तजन जाते हैं और आत्मिक दिव्यशक्तिका अनुभव करते हैं। मैं भी उसी मार्गसे जाऊंगा और आत्माका अनुभव अवश्य लूंगा। मैं सबको मित्रकी दृष्टिसे देखूंगा। सब जगतपर मेरी प्रेमकी दृष्टि रहेगी। सब जनताके हितमें मैं दक्ष रहूंगा। क्योंकि सबके हितमें ही मेरा हित है। मैं सत्यका पालन करूंगा और अपना वायुमंडल शुद्ध ही रखूंगा। हे परमात्मन्! मैं आपके पास शुद्ध होकर आ गया हूं। कृपा करो और मेरा सारथ्य करो।" इस प्रकार के भाव मनमें इस समय स्थिर कीजिए और हृदय को शुद्ध बनाइए।

ॐ कंठः ॥ ७ ॥

अर्थ—मेरा कंठ बलवान और यशस्वी हो।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी पूर्ण दीर्घ आयुकी समाप्तितक मेरा कंठ बलवान और उत्तम शब्दका ध्वनि प्रकाशित करनेका साधक होवे और मैं स्वर साधनसे उत्तम यश को प्राप्त होऊंगा।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकारसे थोडासा जल गलेके चारों ओर लगाइए और निम्न प्रकार कंठासन कीजिए। (१) कंठबंध—गलेको सिकोड कर ठोढी छाती और गलेके संधिमें डाटके लगानेसे कंठबंध होता है। गलेके मूल स्थानमें दोनों तरफकी हड्डियोंके बीचमें अंगुठा रखने योग्य नरमसा स्थान है वहां ठोढी लगनी चाहिए। इससे पीठके रीडके मणियोंका स्थान ठीक होता है जिसके कारण आयुष्य बढने में सहायता होती है। बहुधा मनुष्यका सिर आगे झुकता रहता है, इस दोषके कारण पीठके रीडके मणि अपने स्थानसे हिलते हैं और उनमें जो ज्ञानरसके तंतुओंका प्रवाह चलता रहता है उसको प्रतिबंध होता है। इस कारण सब शरीरमें विविध रोग बढते हैं। इस कंठबंधसे सब पीठके रीढके मणि अपने अपने स्थानमें ठीक जम जाते हैं और ज्ञानरसके तंतुओंका प्रवाह विना प्रतिबंध चलता है। मस्तकसे गुदातक पीठके रीढके मणियों में ज्ञानतंतुओंका स्थान है। इडा पिंगला सुषुम्ना नामक तीन प्रवाह इनमें हैं। इनको ठीक करनेका कार्य कंठबंधके आधीन है, इसलिये उपासक इसका अनुष्ठान ठीक प्रकार करें। (२) कंठपृष्ठबंध—पूर्वोक्त कंठबंध छोडकर मस्तकको सीधा पीठकी ओर लेजाकर मस्तकका पृष्ठभाग गलेके पृष्ठभागके मूलमें लगा देना। इस समय आंख सीधे ऊर्ध्व दिशामें हो जाती हैं। कंठबंध में गलेका छातीके तरफका भाग सिकुड गया था, उसी प्रकार इसमें गलेका पृष्ठभाग सिकुड जाता है और अच्छी प्रकार छाती आगे फैलती है। इसका प्रयोजनभी पूर्व स्थानमें लिखा हुआ ही है। (३) सिरको दाईं ओर बाईं ओर क्रमशः जितना ले जा सकें उतना लेजानेका यत्न करना चाहिए। प्रत्येक बाहुपर ठोढी को लगानेका यत्न करनेसे यह आसन बनता है। (४) सीधे कानको सीधे बाहुपर और पश्चात् दूसरे कानको दूसरे बाहुपर लगानेका यत्न करना चाहिए। इसको क्रमशः करनेसे गलेके नस नाडियोंकी निर्मलता हो जाती है। (५) सिंहासन करनेसे भी गलेकी शुद्धि होती है। इन सब आसनों और बंधोंको करनेके समय अपने मनकी शक्तिको कंठस्थानमें स्थिर करना चाहिए और इच्छाशक्तिको वहां की निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये आज्ञा देनी चाहिए। अपना गला बाहिरसे मजबूत और अंदरसे शब्दोचा-

रके लिये सुरेल, सुस्वर करना चाहिए । वर्णोच्चार उत्तम होना आवश्यक है तथा गलेके स्नायु बलवान होनेसे वृद्धावस्थामें सिरका कंप नहीं होता ।

ॐ शिरः ॥ ८ ॥

अर्थ—मेरा सिर बलवान और यशस्वी बने ।

मानसिक ध्यान—मेरी सौ वर्षकी दीर्घ और पूर्ण आयुकी समाप्तितक मेरा सिर बुद्धिके अद्भुत कर्म करनेमें समर्थ, उत्तम विचार करनेवाला, और सुविचारोंका प्रचार करनेके कारण यशस्वी होवे । मेरी बुद्धिमें बुरा और हानिकारक विचार कभी न आवे । मेरा मस्तक सुविचारोंका केंद्र बने ।

अनुष्ठान—सिरपर थोडासा जलका स्पर्श करके बिलकुल स्तब्ध होकर अपने मस्तक में जो विचारका स्थान है उसका ध्यान कीजिए । शुद्ध और निर्मल विचारों का वह केंद्र बने और कभी कुत्सित विचार के लिये वहां स्थान न मिले इस प्रकार मनको आज्ञा दीजिए । मेरुके पृष्ठपर जो देवसभा है वह यही है । पीठकी रीढके सब मणिमाला को मेरु पर्वत कहते हैं । इन मेरु पर्वोंके ऊपर मस्तिष्कमें देवोंकी सभा है । इस लिये उपासकको इस समय उक्त देवसभाका ध्यान करना चाहिए । सब इंद्रियोंका नाम देव है और उन सब देवोंकी सभा मस्तिष्कमें है । शरीर देवोंका मंदिर है और मस्तिष्क देवोंका सभास्थान है, इस भावना को मनमें दृढ करके निश्चय कीजिए कि मैं अपने सब इंद्रियोंको देवता बनाऊंगा और मस्तिष्क को देवोंका सभागृह बना दूंगा । मनुष्यका मनुष्यत्व उसके सिरमें और उसके हृदयमें है । जैसे जिसके सिर और हृदय होंगे वैसी उसकी योग्यता होती है । इस लिये दृढ निश्चय से अपने मस्तिष्ककी शुद्धिका विचार इस समय करना चाहिए ।

ॐ बाहुभ्यां यशो बलम् ॥ ९ ॥

अर्थ—मेरे बाहुओंमें बल और यश प्राप्त होवे ।

मानसिक ध्यान—मेरे बाहुओंमें उत्तम बल प्राप्त होवे । मेरे बाहु हृष्टपुष्ट सुप्रमाण और सुडौल होकर सदाही बलसे संपन्न रहें । मेरे बाहु

बलवान बनें और सदा सज्जनोंका संरक्षण और दुर्जनोंका निवारण करनेके पवित्र पुरुषार्थमें समर्थ होनेसे यशसे युक्त होवें ।

अनुष्ठान—इस समय पुनः बाहुओंपर पूर्वोक्त प्रकार जलका मर्दन करके अपनी इच्छाशक्तिके द्वारा बाहुबलका ध्यान करना चाहिए । अपना जिस प्रकारका बाहुबल आप बनाना चाहते हैं, उस प्रकारके बाहुबलसे युक्त अपने बाहु हो रहे हैं, ऐसी भावना मनमें दृढ कीजिए । और बाहुओंकी शक्ति बढाने योग्य योगके आसनं इस समय कीजिए । भुजंगासन, हंसासन, उष्ट्रासन, मयूरासन, कोलासन, दोलासन, हस्तवृक्षासन आदि आसन इस समय कीजिए । अथवा बाहुओंका बल बढनेके अन्य आसन जो आप योग्य समझते हैं इस समय कर सकते हैं । परंतु संपूर्ण अनुष्ठानमें बाहुबलके विस्तारकाही पूर्ण विचार मनमें स्थिर और प्रबल करना चाहिए तबही अच्छा फल हो जाता है ।

ॐ कर-तल-कर-पृष्ठे ॥ १० ॥

अर्थ—मेरे हाथके तल और उनके पृष्ठभाग बलवान् और यशस्वी होवें ।

मानसिक ध्यान—मेरे हाथ सब श्रेष्ठ प्रकारका हाथोंका कर्म करनेमें समर्थ और बलवान् होवे । और उनके प्रशस्त कर्मसे मुझे यशकी प्राप्ति होवे । मेरे हाथ कभी बुरे कर्म करनेके लिये प्रवृत्त न होवे ।

अनुष्ठान—पूर्वोक्त प्रकार हाथोंको थोडासा जलका स्पर्श करके एक हाथ दूसरे हाथसे बलसे पकड लीजिए और उस पकडसे पहिले हाथको छुडाइए । इसीप्रकार फिर पकडनेवाले हाथको पकडे हुए हाथसे बलके साथ पकडकर छुडवानेका प्रयत्न करना । जो हाथ पकडा होता है उसको घुमाकर छुडाना चाहिए जिससे अंगुलियोंमें रुधिरका ठीक संचार होनेमें सहायता होती है । इसप्रकार करनेसे आपकोही हलकेपनका अनुभव हो जायगा । और हलकापनही आरोग्य है इसमें कोई संदेह नहीं । इस समय एकएक अथवा सब अंगुलियोंको करपृष्ठकी ओर खींचिए और पश्चात् करतलकी ओर अंदर दबाइए । उंगलिके प्रत्येक पर्वको इस प्रकार अंदर और बाहर अर्थात् आगे और पीछे खींचनेसे संपूर्ण हाथके संधिस्थानकी

शुद्धि होनी है। पर्वोंके संधिमें जो दोष होते हैं उनकी इसप्रकार निवृत्ति होजाती है।

इसप्रकार शेष अवयवों और इंद्रियोंके बलवर्धनका प्रयत्न और उनको यशोवर्धक पुरुषार्थमें प्रवृत्त करनेका निश्चय करना चाहिए। इतनी सूचना करनेसेही अपने अन्य कमजोर इंद्रियोंको बलवान् बनानेका यत्न उपासक पूर्व कही प्रक्रियाके अनुसारही विचार और युक्तिपूर्वक करते रहें। प्रत्येक इंद्रिय और अवयवको नीरोग, बलवान् और सत्कर्ममें प्रवृत्त करनेके उपाय भिन्न भिन्न हैं, उनको पाठक विचारकी दृष्टिसे जान सकते हैं। आशा है कि पाठक इसप्रकार अपने आपको परिपूर्ण बनानेका पुरुषार्थ करेंगे। अंगस्पर्शके मंत्रोंद्वारा अंगोंकी नीरोगता और सबलता सिद्ध होगई थी, अब इन इंद्रियस्पर्शके मंत्रोद्वारा इंद्रियोंकी सबलता और उनकी यशस्वी शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति होगई है। अब सब अवयवों और इंद्रियोंकी पवित्रता संपादन करना है उस कार्यकेलिये निम्न लिखित मार्जन है।

---

(५) मार्जनम्।

ॐ भूः पुनातु शिरसि ॥ १ ॥

अर्थ—हे (ॐ) परमेश्वर! (भूः) मेरा अस्तित्व (शिरसि) मेरे सिरमें (पुनातु) पवित्रता करे।

मानसिक ध्यान—हे परमात्मन्! मेरा अस्तित्व, मेरा जीवन, मेरा चालचलन, मेरा व्यवहार मेरे मस्तक अर्थात् विचारके स्थानकी पवित्रता करे। मेरे जीवनमें ऐसा कोईभी व्यवहार न हो कि जिससे मेरा सिर कुत्सित विचारसे युक्त हो सके।

अनुष्ठान—जलके छींटे सिरपर दीजिए। और अपने अस्तित्व, जीवन, चालचलन, व्यवहार आदिका निःपक्षपातसे विचार कीजिए। आपके जीवनसे आपके सिरपर बुरे भले संस्कार हो रहे हैं। आप अपने बाह्य व्यवहारसे दूसरोंको धोखा दे सकते हैं, परंतु आप स्वयं अपने आपको धोखा नहीं दे सकते। इसलिये अपने मस्तिष्ककी शुद्धिके लिये अपना

चालचलन शुद्ध करनेका पक्का निश्चय कीजिए। अपने किसी अवयव अथवा इंद्रियसे यदि किसी प्रकारका दुष्ट व्यवहार होता होगा, तो वैसा दुराचरण फिर न करनेका पूर्ण निश्चय कीजिए। मैं जीवनसे शुद्ध होकर अपने मस्तिष्कको पवित्र विचारोंका केंद्र बनाऊंगा ऐसा पूर्ण निश्चय कर लीजिए। और अपने चालचलनके सब दोष दूर कीजिए। परमेश्वरको सन्मुख समझकर उनके सामने उक्त प्रकार प्रतिज्ञा कीजिए।

ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः ॥ २ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! मेरा (भुवः) ज्ञान मेरे नेत्रोंकी पवित्रता करे।

मानसिक ध्यान—हे परमात्मन्! मेरा ज्ञान ऐसा उत्तम हो कि जिससे मेरी दृष्टि शुद्ध बने। मेरे पास किसी समय ऐसा कोई विचार न आवे कि जिससे मेरी दृष्टिमें किसी प्रकारका भी दोष उत्पन्न हो सके।

अनुष्ठान—अपने नेत्रोंपर जलके छींटे दीजिए। आप जगतके पदार्थोंके तरफ किस दृष्टिसे देख रहें हैं इसका विचार इस समय कीजिए। आपकी दृष्टि शुद्ध और पवित्र होनी चाहिए। मित्रकी सत्य, शुद्ध और पवित्र दृष्टि आपके पास है वा नहीं, इसका विचार कीजिए। स्त्री, पुरुष, उच्च, नीच, धन, बल, आदिके पास देखनेके समय आपकी पवित्र दृष्टि चाहिए। हीन दृष्टिसे किसीको न देखिए। ज्ञानसेही आपकी दृष्टिमें पवित्रता आती है। इसलिये जो आप पढते, सुनते, बोलते, कहते हैं और उक्त प्रकारसे जो ज्ञानका व्यवहार आप कर रहे हैं, उससे आपकी दृष्टिकी पवित्रता बढ रही है या नहीं, इसका विचार कीजिए। यदि आपके ज्ञान ग्रहण करनेकी रीतिमें कोई दोष हों, तो उनको दूर कीजिए। और अपनी दृष्टिकी पवित्रता जिस प्रकारके ज्ञानसे होगी, उस प्रकारका ज्ञान पास कीजिए।

ॐ स्वः पुनातु कंठे ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! मेरी (स्वः) आत्मशक्ति मेरे कंठकी पवित्रता करे।

मानसिक ध्यान—हे परमात्मन्! मेरा सत्व, मेरी निजशक्ति, मेरा आत्मिक बल, जो (स्वः—स्वर्—सु+वर्) सबसे वर अर्थात् श्रेष्ठ है, सबसे उत्तम है, वह मेरी निजशक्ति मेरे कंठकी पवित्रता करे। मेरे

शब्दोंमें पवित्रता रहे । मेरे शब्दोंसे आत्मिक पवित्रता प्रकट होवे । ऐसा कभी न होवे कि मेरे शब्दोंद्वारा अवनतिके विचार फैलें ।

अनुष्ठान—कंठपर जलके छींटे दीजिए । कंठ शब्दका स्थान है वहांही 'उदान-प्राण' रहता है । उदान प्राणकी उपासनासे योगीकी सर्वोत्तम उच्चगति होती है । इसलिये उपासक को कंठकी पवित्रता संपादन करना आवश्यक है । आचमनादिद्वारा कफनिवृत्तिपूर्वक स्थूल कंठकी पवित्रता इससे पूर्व हो चुकी है । यहां कंठकी पवित्रताका तात्पर्य पवित्र शब्दोच्चारसे है । वाक्शक्ति ही मनुष्यका 'स्व-त्व' है, क्योंकि इसीसे मनुष्यकी विशेषता अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा है । इससे पूर्व सिरकी पवित्रतासे पवित्र विचारोंकी सिद्धि और नेत्रकी पवित्रतासे दृष्टिकी पवित्रताकी सिद्धि हो चुकी है । विचारकी पवित्रताके पश्चात् उच्चारकी पवित्रता अब करना है । उपासकको उचित है कि अपने मनुष्यत्वकी विशेषता वाणीके कारण इस कंठमें है, इस बातको इस समय स्मरण करे और बुरे शब्दोंका उच्चारण कभी न करनेका पूर्ण निश्चय परमेश्वरस्मरण पूर्वक इस समय करे । अपनी वाणीमें जो दोष हों उनको हटानेका प्रयत्न करे और निज आत्मशक्तिका विकास वाणीद्वारा करनेके लिये अपनी पराकाष्ठा करे ।

ॐ महः पुनातु हृदये ॥ ४ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! मेरी (महः) श्रेष्ठतासे मेरे हृदयकी पवित्रता होवे ।

मानसिक ध्यान—हे परमात्मन् ! मेरे आत्माकी जो श्रेष्ठता है उससे मेरा हृदय पवित्र बने । सदा उच्च और प्रशंसनीय विचार और भाव मेरे हृदयमें निवास करें । आत्मिक श्रेष्ठतासे सदाही मेरा हृदय श्रेष्ठ बना रहे ।

अनुष्ठान—हृदयपर जलके छींटे दीजिए । और अपनी आत्मिक श्रेष्ठता, पूर्णता और पवित्रताका ध्यान कीजिए । आप अपने अंदर जो न्यूनताका अनुभव कर रहे हैं वह प्राकृतिक है, वह आपना निज आत्मिक स्वरूप नहीं है । जो आपके हृदयमें चित्शक्ति है और जो आपका निज-स्वरूप है; जिसका तेज सब शरीरमें फैल रहा है, वह दिव्य आत्मशक्ति बडीही अद्भुत है । आपके प्राकृतिक, स्थूल मर्यादित, संकुचित, हीन

भावोंके कारण आत्माके असली निजरूपकी शक्तिका विकास और प्रकाश होनेमें रुकावट हो रही है । इस लिये अपने हृदयमें अमर्याद भक्ति, अमर्याद मित्रता, अमर्याद प्रेम बढाइए और इसकी सिद्धिके लिये अपने आत्माके प्रभाव, गौरव और श्रेष्ठत्वका चिंतन कीजिए । अपने आपको हीन, पतित और बुरा न समझें । इस समय जो भाव आप अपने आत्माके अंदर हैं, ऐसा मानेंगे, वही वहां प्रकट होंगे, इसलिये अपनी पूर्णताका ध्यान कीजिए । पूर्ण परमात्माके अग्निमें तप्त होनेसे आपका जीव-आत्मा भी वैसाही तेजस्वी है, ऐसी भावना मनमें धारण कीजिए । प्रभुके अत्यंत समीप रहनेका जिसको स्वयंसिद्ध अधिकार है वह जीवात्मा हीन कभी नहीं हो सकता । इसलिये इसकी श्रेष्ठतासे अपने हृदयकी पवित्रता और श्रेष्ठता संपादन कीजिए । अपने हृदयके मानस सरोवरमें जो लहर उठेगी, वही सब शरीरके जगतमें फैल जानी है, इसलिये शुभभावनाकी श्रेष्ठतापूर्ण ही लहर अर्थात् भावना इस हृदयमें उत्पन्न होने दें । सब प्रकारके द्वेष और हीनभाव दूर रखिए और शुभ विचार ही पास कीजिए । आत्माका स्वाभाविक तेज हृदयमें फैलाइए । इस समय आत्माके अद्भुत शक्तिका ध्यान कीजिए और जो शुभगुण अपनेमें धारण करना चाहते हैं, उस गुणसे युक्त अपार सामर्थ्यशाली परमात्मामें अपने आपको मान लीजिए । इसप्रकार जिस गुणकी धारण आप करेंगे उस गुणसे युक्त आप स्वयं बन जांयगे । इस प्रकार प्रतिदिन करनेसे जिस प्रकारकी हृदयकी पवित्रता आप करना चाहते हैं, उस प्रकारका पवित्र और श्रेष्ठ हृदय आपका निश्चयसे बन जायगा । इसमें कोई संदेह ही नहीं है ।

ॐ जनः पुनातु नाभ्याम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! मेरी (जनः) जननशक्ति नाभिस्थानकी पवित्रता करे ।

मानसिक ध्यान—हे परमेश्वर ! मेरी प्रजननशक्तिसे मेरा नाभिस्थान पवित्र होवे । ऐसा कोई कार्य मेरेसे न होवे कि जिससे मेरी यह शक्ति क्षीण हो सके ।

अनुष्ठान—प्रजनन अर्थात् संतान उत्पन्न करनेकी शक्ति नाभि और उसके निचले भागमें रहती है । इसके स्थिर और पवित्र हो-

नेसे नाभिस्थानकी पवित्रता होती है। इसका तात्पर्य इतनाही है कि वीर्यकी स्थिरता शरीरमें उत्तम प्रकारसे होनेके कारण 'समान-प्राण' शरीरमें बलवान् रहता है और उसके ठीक रहनेसे सब शरीरका आरोग्य प्राप्त होता है। वीर्यकी क्षीणता होनेसे 'समान-प्राण' निर्बल हो जाता है और उसके अशक्त होनेसे शरीरमें विविध रोग बढने लगते हैं। इसलिये वीर्यके स्थिर होनेके द्वारा 'समान-प्राण' के नाभिस्थानकी पवित्रता प्राप्त करना आवश्यक है। जनन इंद्रियके संयमद्वारा इस स्थानकी पवित्रता प्राप्त की जा सकती है। आयुके प्रथम पच्चीस वर्षके भागमें पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने और गृहस्थाश्रममें ऋतुगामी होनेसे वीर्यकी स्थिरता और नाभिस्थानकी पवित्रता प्राप्त हो सकती है। ब्रह्मचर्य पालनके विषयमें इतनाही कहना यहां आवश्यक है कि जिनके विचार शुद्ध और पवित्र होते हैं, उनकाही ब्रह्मचर्य स्थिर रह सकता है। मनके द्वारा, स्त्री आदि विषयका चिंतन करना छोडनेसे तथा मनको राष्ट्रीय सार्वजनिक तथा ईश्वरविषयक महान् शुभकर्मोंमें लगानेसे वीर्यकी स्थिरता प्राप्त होती है। योगसाधन करनेमें रुचि बढानेसेभी जननस्थानकी पवित्रता प्राप्त हो सकती है। नाभिस्थान और वीर्य पवित्र होनेसे उत्तम संतान उत्पन्न होता है। तथा योगसाधनद्वारा दीर्घ आयु, नीरोगता, चित्तादिककी प्रसन्नता तथा अन्य योगफल प्राप्त हो सकते हैं। अपना मन शुभ विचारोंसे युक्त करके जननइंद्रियादिक के जो जो दोष अपनेमें होंगे, उनकी निवृत्ति करनेका इस समय दृढनिश्चय करना चाहिए।

ॐ तपः पुनातु पादयोः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! मेरी (तपः) कष्ट सहन करनेकी शक्ति पावोंकी पवित्रता करे।

मानसिक ध्यान—हे परमात्मन् ! मेरा तपका अभ्यास अर्थात् शीतोष्णादि सहन करनेका अभ्यास पांव आदि स्थूल अवयवोंकी पवित्रता करे। मेरा कोई अवयव ऐसा निर्बल न हो कि जो शीतउष्णके सहन न होनेसे रोगी होवे। मेरे सब अवयव उत्तम सहनशक्तिसे युक्त होकर निर्दोष रहें।

अनुष्ठान—शीतउष्ण, सुखदुःख हानिलाभ, नरम और सख्त आदि द्वंद्वोंको सहन करनेका अभ्यास तप है। शीतकालमें शीतको सहना और उष्णकालमें उष्णताको सहन करना, तथा सुखदुःख अथवा हानिलाभके कारण प्रारंभ कियेहुए सत्कर्मसे निवृत्त नहीं होना। इसी प्रकार अन्य द्वंद्वोंका अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास अन्य समयमें करना चाहिए। तपके अभ्याससे ऋतु बदलनेपरभी शरीर नीरोग रह सकता है। बाह्य परिस्थिति बदल जानेपरभी शरीरकी समता तपके अभ्यासके कारण ठीक प्रकार रहती है। अपने शरीरके लिये जिसप्रकारके तपकी आवश्यकता है उस प्रकारका तप निश्चयपूर्वक मैं करूंगा और पांवआदि स्थूल शरीरकी सहनशक्ति अवश्य बढाऊंगा, ऐसा यहां निश्चय करना चाहिए। अपने शरीरकी कमजोरी किस बातमें है और उसको दूर करनेके लिये किस प्रकारका तप करना चाहिए, इसका इस समय विचार और निश्चय कीजिए।

ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ॥ ७ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर! (पुनः) फिर मेरे सिरमें सत्य पवित्रता करे।

मानसिक ध्यान—मेरी सत्यकी निष्ठासे मेरा मस्तिष्क पवित्र होवे। मैं आग्रहसे सत्यका पालन करूंगा। सत्यका अवलंबन करूंगा। मैं निश्चय करता हूं कि मैं असत्यका त्याग करके अवश्यही सत्यका पालन करूंगा।

अनुष्ठान—प्रारंभमें सिरकी पवित्रता अपने चालचलनकी शुद्धताके द्वारा संपादन करनेकी सूचना दीगई है। इस मंत्रमें सत्य निष्ठाके अभ्याससे पुनः सिरकी पवित्रता करनेका उपदेश किया है। सिरकी पवित्रता वारंवार करनेका उद्देश स्पष्ट ही है, क्योंकि मस्तिष्क (दिमाग) से ही मनुष्यकी उच्चनीचता सिद्ध होती है। केवल सत्यका आग्रहही एक उपाय है, कि जिससे मनुष्यका मस्तिष्क पवित्र हो सकता है। मनुष्यकी वृत्ति लालचमें फंसती है और असत्यमें प्रवृत्त होती है। इसलिये प्रबल निष्ठासे और निर्लोभतासे सत्यका आग्रहके साथ पालन करना चाहिए। जितना सत्यका पालन होगा उतनी मस्तिष्क की शुद्धि हो सकती है। यहां उपासकको उचित है कि वह देखे कि अपने प्रतिदिनके आचरणमें सत्यका

कहांतक पालन हो रहा है और असत्य कहांतक अंदर घुस रहा है। प्रत्येक समय अपने चालचलनका निरीक्षण सत्यकी कसौटीसे करना चाहिए और सत्यके पालनमें प्रतिदिन अधिक अधिक प्रवृत्ति करनेका यत्न करना चाहिए।

ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥ ८ ॥

अर्थ—ओंकार वाच्य (खं) आकाशवत् व्यापक ब्रह्म सर्वत्र पवित्रता करे। तथा (अ+उ+म्) जागृति स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन मेरी अवस्थाएं तथा मेरी (खं) सब इंद्रियें और मेरा (ब्रह्म) ज्ञान सर्वत्र मेरी पवित्रता करे।

मानसिक ध्यान—परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे वह सबकी पवित्रता सदा सर्वदा करता है, इसलिये वह मुझेभी पवित्र बनावे। तथा मैंभी अपनी पवित्रता करनेकेलिये तत्पर रहूंगा। मैं अपनी जागृति स्वप्न और सुषुप्तिमें अर्थात् सब जीवनमें पवित्रताका जीवन व्यतीत करूं गा। सब इंद्रियोंको पवित्र मार्गमें प्रवृत्त करूंगा तथा अपने ज्ञानसे सर्वत्र पवित्रताका प्रचार करूंगा।

अनुष्ठान—इस समय शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमात्माकी पवित्रताका ध्यान कीजिए। तथा अपनी सब अवस्थाएं, सब अवयव और इंद्रिय तथा अपना सब प्रकारका ज्ञान अपनेको पवित्रताकी ओर ले जा रहा है वा नहीं, इसकी अच्छीप्रकार परीक्षा कीजिए। और सर्व साधारणतासे अपने आध्यात्मिक सुधारका चिंतन कीजिए।

इस प्रकार इस अनुष्ठानमें अपनी पवित्रता संपादन करनेका यत्न कीजिए। अंगस्पर्शके समय नीरोगता, स्वास्थ्य और बलका यत्न होगया। इंद्रियस्पर्शके समय बलके साथ यशप्राप्तिका यत्न होगया। अब इस मार्जन (शुद्धि) विधिमें अपने सब इंद्रियादिकोंकी शुद्धता करनेका प्रयत्न होगया है, इस प्रकार स्वास्थ्य, यश और पावित्र्य प्राप्तिके पश्चात् अब प्राणायाम कीजिए।

---

(६) प्राणायामः।

**ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ स्वः। ॐ महः।
ॐ जनः। ॐ तपः। ॐ सत्यम्॥**

अर्थ—हे (ॐ) परमात्मन्। (भूः) अस्तित्व, (भुवः) ज्ञान, (स्वः) स्वत्व, (महः) श्रेष्ठता, महत्त्व, (जनः) जननशक्ति, (तपः) द्वंद्व सहन करनेकी शक्ति, (सत्यं) सत्यनिष्ठा इन सब अपनी शक्तियोंको मैं प्राणके निरोधसे स्वाधीन रखता हूं अर्थात् इन शक्तियोंका संयम मैं करता हूं।

मानसिक ध्यान—हे परमात्मन्! मैं अपनी प्राणशक्तिके निरोधसे प्राणायामद्वारा अपनी सब शक्तियोंका संयम करता हूं। क्योंकि प्राणके आधारसेही उक्त सब शक्तियोंकी स्थिति है। मेरा अस्तित्व अर्थात् जीवन, ज्ञान, स्वत्व, महत्त्व, जननसामर्थ्य, तप और सत्यपालन, ये सब संयमद्वारा मेरे स्वाधीन हो जावें। प्राणायामद्वारा मनका संयम और इंद्रियोंका दमन होकर अपनी सब शक्तियां मेरे स्वाधीन रहें। कभी कोई इंद्रियकी शक्ति उच्छृंखल न होवे। अपनी सब शक्तियां स्वाधीन होनेसेही मैं उनको अपनी उन्नतिके अभीष्ट कार्यमें ठीक प्रकार लगा सकता हूं।

अनुष्ठान—यहां पूर्वोक्त प्रकारका पूर्ण अर्थात् चतुष्पाद प्राणायाम करना चाहिए। प्रारंभमें केवल तीन वारही करना उचित है। प्रत्येक पंद्रह दिनके अभ्यासके पश्चात् एक संख्या बढाइए। इसप्रकार अस्सी (८०) तक बढाना योग्य है। उपासक अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार न्यून अथवा अधिक संख्यामें प्राणायाम करते रहें। पूर्वोक्त पूर्ण प्राणाम ८० करनेके लिये दो घंटेका समय अवश्यही लगता है। जिसके पास समय हो वह अवश्य करे। क्योंकि प्राणायामका साधन होनेसेही योगसे साध्य उच्च भूमिकाओंमें प्रवेश होने योग्य अवस्थाकी प्राप्ति होती है। प्राणायाम करनेके समय उक्त सात शक्तियां प्राणके द्वारा अपने अंदर बढ रहीं हैं ऐसी भावना मनमें धारण करना चाहिए। पूरकके समय शक्तियोंकी प्राप्ति, कुंभकके समय शक्तियोंकी स्थिरता और रेचकके समय दोषोंका निरास हो रहा है, ऐसी भावना करनेसे बडा लाभ होता है। उक्त सात शक्तियां

अपना गौरव बढानेवाली हैं। प्रत्येक शक्तिकी श्रेष्ठता अवर्णनीय है, इसलिये प्रत्येक शक्तिका विकास होनेकी आवश्यकता है। उपासक प्रयत्न करके उक्त शक्तियोंका विकास अपने अंदर करें।

(७) अघमर्षणम्।

(ऋषिः—अघमर्षणो माधुच्छंदसः। देवता–भाववृत्तम्॥)

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत॥
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ १॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत॥
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥
सूर्याचंद्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्॥
दिवं च पृथिवीं चांतरिक्षमथो स्वः॥ ३॥

ऋ. १०। १९०

अर्थ—(अभि–इद्धात्) प्रदीप्त (तपसः) आत्मिक तपके तेजसे ऋत और सत्य ये सार्वकालिक और सार्वभौमिक नियम प्रथम (अधि–अजायत) उत्पन्न हो गये। (ततः) पश्चात् (रात्री अजायत) प्रलयकी रात्रि होगई। और तदनंतर प्रकृतिका समुद्र (अर्णवः) अशांत हो गया। इस प्रकृतिके प्रक्षुब्ध समुद्रसे (संवत्सरः) काल (अधि अजायत) उत्पन्न हो गया। (विश्वस्य मिषतः) सब जगत्के हलचलको (वशी) वशमें रखनेवाले (धाता) विधाता ईश्वरने (यथापूर्वं) पूर्वके समानही आकाश, द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, सूर्य, चंद्र, दिन, रात, आदि सब (विदधत्)बनाया और (अकल्पयत्) अपने अपने स्थानमें सुरक्षित रख दिया है॥

मानसिक ध्यान—इस संपूर्ण जगत्के समान पूर्व कल्पमेंभी इसी प्रकार यथायोग्य सब जगत् था। उसके प्रलयके समयमें भी परमात्माके ऋत और सत्य नामक अटल नियम अपना कार्य कर रहे थे। अर्थात् ये नियम जैसे सृष्टिमें कार्य करते हैं, उसीप्रकार प्रलयके समयभी दक्षतासे

कार्य करते रहते हैं । पूर्व सृष्टिके अंतके पश्चात् प्रलय रात्रिका प्रारंभ हुआ। नियत समय जानेके पश्चात्, जब दूसरी सृष्टि उत्पन्न होनेका समय प्राप्त हुआ, तब दिव्य मूल प्रकृतिके अंदर हलचल होने लगी । परमात्माके ऋत और सत्य नियम जगतकी रचना करनेयोग्य हलचल करने लगे। जिसके कारण प्रकृतिके भयानक विशाल समुद्रके अंदर बडी हलचल मची। इससे समयकी उत्पत्ति हो गई । जगतकी सब हलचलको अपने आधीन रखनेवाले परमेश्वरने इसके पश्चात् इस वर्तमान जगत्की उत्पत्ति की। उसने यह संपूर्ण जगत् वैसाही रचा कि जैसा पूर्वकल्पमें था ॥

जिस प्रकार मनुष्य दिनका कार्य करके सोजाता है और दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर फिर कलका अधूरा कार्य समाप्त करनेके लिये प्रयत्न करने लगता है । उसी प्रकार पूर्वकल्पके अंतकी अवस्था इस कल्पके प्रारंभमें शुरू हो गई है । पूर्व कल्पके अंतमें जो जिसका जैसा पापपुण्य, सुकृत दुष्कृत आदि था, वैसा ही इस कल्पके प्रारंभमें उसको प्राप्त होगया है । बीचके प्रलयसे अपने अपने पापपुण्यमें न्यूनाधिकता नहीं हुई । जिस प्रकार रात्रिकी गाढ निद्रासे अपने कलके सुकृत दुष्कृत नष्ट नहीं होते, परंतु सब जैसेके तैसेही आजके भोगके लिये स्थिर रहते हैं, ठीक उसीप्रकार प्रलयकी महारात्रि और कालनिद्रासेभी पूर्वकल्पके पापपुण्य जैसेके तैसेही जीवोंके साथ रहते हैं । अर्थात् जो नियम "दैनिक निद्रा" और प्रलयकालिक "कालनिद्रा" के विषयमें है वह ही मृत्युकी "महानिद्रा" के विषयमेंभी समझना उचित है। तात्पर्य उक्त नियमके अनुसार पूर्वजन्मके सुकृत दुष्कृत मृत्युकी महानिद्राके कारण नष्ट नहीं होते, परंतु द्वितीय जन्मके समय जीवको जैसेके तैसेही प्राप्त होते हैं । मृत्युसे पूर्वशरीर नष्ट हो जानेके कारण पूर्व जन्मके सुकृत दुष्कृत नष्ट नहीं होते । इससे बोध यही है कि जिसके जो सुकृत अथवा दुष्कृत होते हैं, वे उसको वैसेही भोगने पडते हैं । अर्थात् मुझे भी अपने दुष्कृतों और पापोंका दंड अवश्यही भोगना पडेगा । परमेश्वरके ऋत और सत्य नियम मुझे नहीं छोडेंगे, फिर मैं अपके दुराचारको कहां छिपा सकता हूं ? इसलिये सबसे उत्तम यही है कि मैं अपने दुराचारका दंड भोगनेके लिये स्वयंही उद्यत हो जाऊं और अपने किये पापोंको छुपानेके लिये और नये पाप न करूं । इसलिये अब

सरल भावसे मैं अपने नियमविरुद्ध आचरणका दंड भोगनेके लिये तैयार होता हूं और प्रार्थना करता हूं कि—"हे परमेश्वर! मैं अपने किये दुष्कर्मोंका दंड भोगनेके लिये तैयार हूं। मैं कभी अपने पाप नहीं छुपाऊंगा। अपने दोषोंको सरल रीतिसे दूर करनेका यत्न करूंगा। गत.........समयमें.........ये दुष्कर्म मैने किये। मैं उनको छुपाना नहीं चाहता। परंतु उनका परिणाम भोगकरही उनसे निवृत्त होना चाहता हूं। साथ ही मैं यहां पश्चात्तापपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं जानबूझकर इसप्रकारके कोई बुरे विचार, हीन उच्चार और कुत्सित आचार भविष्यकालमें कभी नहीं करूंगा। हे ईश्वर! मैं असत्यको छोडकर सत्यका अवलंबन करता हूं। मैं पवित्र बनकर तेरी शरण आता हूं। मुझे आश्रय दो।"

अनुष्ठान—मनमें यह विचार स्थिर रखना चाहिए कि, व्यक्ति, समाज, जाति, राष्ट्र, जनता और जगतमें एकही अटल नियम है, कि जिससे सब सृष्टिका प्रवाह चलाया जा रहा है। भूतकालमें किये अच्छे बुरे कर्मका भला और बुरा परिणाम जैसा व्यक्तिको वैसाही राष्ट्रकोभी अवश्य भोगनाही चाहिए। इसलिये हरएकको उचित है कि वह प्रतिदिन आत्मपरीक्षा करके अपने वैयक्तिक और जातीय अथवा राष्ट्रीय दोषोंको जानकर, उनको दूर करनेका प्रयत्न विचारपूर्वक किया करे। स्वपक्षके दोषोंका मंडन और परपक्षके गुणोंका खंडन पक्षपातपूर्वक करनेसे यद्यपि सभाओंमें विजय प्राप्त किया जा सकता है, तथापि उससे कभी अभ्युदय हो नहीं सकता। इसलिये अपने राष्ट्रके दोषोंका इस समय विचार करना और उनको दूर करनेका पुरुषार्थ करना चाहिए। यही (अघ—)पापको (—मर्षण) सहना, अर्थात् अपने किये दुराचारके परिणामका बुरा फल भोगनेको उद्यत रहना है। यहही सच्चा प्रायश्चित्त है। चित्तशुद्धिका यही उत्तम उपाय है॥

व्यक्तिमें और जनतामें कौनसे गुण और कौनसे दोष होते हैं उसका विचार मनके द्वारा सूक्ष्म विचारके साथ परिभ्रमण करनेसे हो सकता है। यही कार्य "मनसा परिक्रमण्" के मंत्रोंद्वारा अब क़ीजिए—

(८) मनसा परिक्रमणम् ।

ॐ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिता-ऽऽदित्या इषवः ॥ तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ॥ यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः ॥ १ ॥

अथर्ववेद ३ । २७ ।.

अर्थ—(प्राची दिक्) उदयकी दिशाका (अग्निः अधिपतिः) तेजस्वी स्वामी, (अ–सितः रक्षिता) बंधनरहित रक्षक, और (आदित्याः इषवः) प्रकाशरूप शस्त्र हैं ॥ (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) तेजस्वी स्वामियोंको ही (नमः) मेरा नमन है। उन (रक्षितृभ्यः नमः) बंधनरहित संरक्षकोंके लियेही हमारा आदर है। उन (इषुभ्यः नमः) प्रकाशके शस्त्रोंके सामनेही हमारी नम्रता रहेगी। (एभ्यः नमः अस्तु) इनके लिये ही हमारी नम्रता रहे ॥ (यः) जो अकेला (अस्मान्) हम सब आस्तिकोंका (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यं) जिस अकेले दुष्टका (वयं) हम सब धार्मिक पुरुष (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तं) उस दुष्टको हम सब (वः) आप सब सज्जनोंके (जंभे) न्यायके जबडेमें (दध्मः) धर देते हैं।

मानसिक ध्यान—प्राची दिशा अभ्युदय, उदय और उन्नतिकी सूचक है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्रआदि सब दिव्य पदार्थोंका उदय और उन्नति इसी दिशासे होती है और उदयके पश्चात् उनको पूर्ण प्रकाशकी अवस्था प्राप्त होती है। इस लिये सचमुच यह प्रगतिकी दिशा है। जिस प्रकार इस उदयकी दिशासे सबका उदय और वर्धन हो रहा है उसीप्रकार हम सब मनुष्योंका अभ्युदय और संवर्धन होना चाहिए। यह पूर्व दिशा हम सब मनुष्योंको उदय प्राप्त करनेकी सूचना दे रही है। इस शिक्षाके अनुसार हम सबको मिलकर अभ्युदयकी तैयारी करना चाहिए। इस सूचना और शिक्षाका ग्रहण करके मैं अपने और

जनताके अभ्युदयके लिये अवश्य यत्न करूंगा । उदयकी दिशाका (अग्निः)अग्रणी,ज्ञानी और वक्ता अधिपति है । उदयका मार्ग ज्ञानी उपदेशों-द्वाराही ज्ञात हो सकता है, इसलिये हम सब लोक ज्ञानी उपदेशकोंके पास जाकर जागृतिके साथ उनका उपदेश ग्रहण करेंगे । अब सोनेका समय नहीं है । उठिए, जागृतिका समय प्रारंभ हुआ है । चलिए, तेजस्वी ज्ञानसे युक्त गुरुके पास जायेंगे और उनसे ज्ञानका प्रकाश प्राप्त करेंगे। इस उदयकी दिशाका (अ–सितः) बंधनोंसे दूर रहनेवाला, स्वतंत्रताके विचार धारण करनेवालाही रक्षक है । ज्ञानीके साथ रहकर ज्ञानकी प्राप्ति और स्वातंत्र्यके संरक्षके साथ रहनेसे स्वातंत्र्यकी प्राप्ति होती है । स्वतंत्र-ताके विना उन्नति नहीं होगी इसलिये स्वातंत्र्यका संरक्षण करना आवश्यक है । इस संरक्षणके शस्त्रास्त्र (आदित्याः) प्रकाशके किरण हैं । प्रकाशके साथही स्वातंत्र्य रहता है । विशेषतः ज्ञानके प्रकाशसे स्वातंत्र्यका संव-र्धन होना है । प्रकाश जिसप्रकार अज्ञानका निवारण करता है ठीक उसी-प्रकार ज्ञानका सूर्य अज्ञानके आवरक अंधकारमय प्रतिबंधोंको दूर करता है । अभ्युदय प्राप्त करनेके लिये स्वसंरक्षण होनेकी आवश्यकता है और प्रतिबंधोंको दूर करनेसेही स्वसंरक्षणकी शक्ति अपनेमें बढती है । तेज-स्विता, ज्ञान, वक्तृत्व, आत्मसंमान आदि आग्नेय गुणोंके आधिपत्यसेही अभ्युदय होता है, इसीलिये तेजस्वी अधिपतियों, स्वतंत्रताके संरक्षकों और प्रतिबंधनिवारक प्रकाशमय शक्तियोंकाही हम आदर करते हैं । इस के विपरीत गुणोंका हम कभी आदर नहीं करेंगे । जो अकेला दुष्ट मनुष्य सब आस्तिक धार्मिक भद्र पुरुषोंको कष्ट देता है, उनकी प्रगति और उन्नति-में विघ्न करता है, तथा जिसके दुष्ट होनेमें सब सदाचारी भद्र पुरुषोंकी पूर्ण संमति है, अर्थात् जो सचमुच दुष्ट है, उसको भी दंड देना हम अप-ने हाथमें नही लेना चाहते, परंतु हे तेजस्वी स्वामियो और स्वतंत्रता देने-वाले संरक्षको ! आपके न्यायके जबडेमें हम सब उसको रख देते हैं । जो दंड आपकी पूर्ण संमतिसे योग्य होगा आपही उसको दीजिए । समाजकी शांतिके लिये हरएक मनुष्यको उचित है कि वह सच्चे अपराधीकोभी दंड देनेका अधिकार अपने हाथमें न लेवे, परंतु उस अपराधीको अधिपतियों और संरक्षकोंकी न्यायसभामें अर्पण करे तथा पूर्वोक्त प्रकारके अधिपति

और संरक्षकोंकाही सदा आदर करे । अर्थात् सत्य और न्यायका विजय करनेके लिये सदा तत्पर रहे ॥

अनुष्ठान—उपासक इस समय अपने सामाजिक और जातीय अवस्था-का विचार उक्त मंत्रके अनुसंधानसे करे, धर्मके अनुकूल अपना कर्तव्य सोचे और तदनुसार पुरुषार्थ करनेके लिये अपने मनकी तैयारी करे। सद्गुणोंका आदर और दुष्ट गुणोंका निरादर करनेका मानसिक धैर्य अपने अंदर बढावे । सज्जनोंका सत्कार करने और दुर्जनोंका निराकरण करनेका उत्साह मनमें बढावे। इस प्रकार आत्मयज्ञकी तैयारी करे। तथा अघमर्षण-तक जो अपनी उन्नति संपादन की है उसका समर्पण इस जनतात्माकी उन्नतिके अर्थ करनेका दृढ संकल्प करे ।

ॐ दक्षिणा दिगिंद्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ॥ तेभ्यो नमोऽधिपति-भ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ॥ यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः ॥ २ ॥

अर्थ—(दक्षिणा दिक्) दक्षताकी दिशाका (इंद्रः अधिपतिः) शत्रु-निवारक शूर स्वामी, (तिरश्चि–राजी रक्षिता) मर्यादाका अतिक्रमण न कर-नेवाला संरक्षक और (पितरः इषवः) पितृशक्तियां अर्थात् प्रजननकी शक्तियां शस्त्र हैं । हम सब उन शत्रुनिवारक शूर अधिपतियोंका, अपनी मर्यादाका कभी अतिक्रमण न करनेवाले संरक्षकोंका तथा सुप्रजा निर्माणके लिये समर्थ पितृशक्तियोंका ही आदर करते हैं । जो हम सब आस्तिकोंका विरोध करता है और जिसका हम सब आस्तिक विरोध करते हैं, उसको हम सब आप स्वामी और संरक्षकोंके न्यायके जबडेमें धर देते हैं ॥

मानसिक ध्यान—दक्षिण दिशा दाक्षिण्यका मार्ग बता रही है। दक्षता, चातुर्य, कौशल्य, कर्मकी प्रवीणता, शौर्य, धैर्य, वीर्य आदि शुभ

गुणोंकी सूचक यह दिशा है, इसीलिये सीधा अंग दक्षिणांग कहलाता है, और सीधा मार्ग अथवा दक्षिण मार्ग इसी दक्षिण दिशासे बताया जाता है। अर्थात् दक्षिण दिशासे सीधेपनके मार्गकी सूचना मिलती है। शत्रुका निवारण करने, अपने नियमोंकी मर्यादाका उल्लंघन न करने और उत्तम प्रजा निर्माण करनेकी शक्ति धारण करनेवाले क्रमशः इस मार्गके अधिपति, संरक्षक और सहायक हैं। इन्हींका आदर और सन्मान करना योग्य है। अपनी उन्नतिका साधन करनेके लिये (इन्-द्र) शत्रुओंका विदारण करनेकी आवश्यकता होती है। शत्रुका पराजय करनेपरही अपना मार्ग निष्कंटक हो सकता है। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेसे अपना बल बढता है और शत्रुदमन करनेके पुरुषार्थसे अपनेमें उत्साह स्थिर रहता है। इस लिये मेरे तथा समाजके शत्रुओंका शमन करनेके उपायका अवलंबन करना मेरेलिये आवश्यक है। समाजकी शांतिके लिये अपनी मर्यादाका उल्लंघन न करनेवाले संरक्षकोंकी आवश्यकता है। कोई संरक्षक अपनी मर्यादा उल्लंघन करके अत्याचार न करे। मैंभी कभी अपने नियमोंका और मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करूंगा। समाजकी सुस्थितिके लिये उत्तम पितृशक्ति अर्थात् सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्तिकी अत्यंत आवश्यकता है। सुप्रजानिर्माणसे समाज अमर रह सकता है। इस लिये हरएक पुरुषको अपने अंदर उत्तम पुरुषत्व तथा हरएक स्त्रीको अपने अंदर उत्तम स्त्रीत्व विकसित करना चाहिए। तात्पर्य उक्त प्रकारके शत्रुनि-वारक अधिपति, नियमानुकूल व्यवहार करनेवाले संरक्षक और उत्तम पितर जहां होते हैं वहांही दाक्षिण्यका व्यवहार होता है। इसी प्रकारकी व्यवस्था स्थिर करनेका यत्न मैं अवश्य करूंगा। जो सबको हानि पहुं-चाता है और जिसको सब समाज बुरा कहता है उसको उक्त अधिकारी, संरक्षक और पितरोंके न्यायालयमें हम सब पहुंचाते हैं। वेही उसके दोषका यथायोग्य विचार करें। हरएक मनुष्यको उचित है, कि वह सीधे मार्गसे चले और समाजकी उन्नतिके साथ अपनी उन्नतिका उत्तम प्रका-रसे साधन करे।

अनुष्ठान—उपासकको उचित है, कि वह उक्त मंत्रकी कसौटीसे अपनी तथा अपने समाजकी परीक्षा करे और अपने अधिपति, रक्षक और

पितरोंकी वास्तविक अवस्थाको सोचे। तथा अपने अंदर शत्रुका दमन करनेका सामर्थ्य, नियमानुकूल सब व्यवहार चलानेका अभ्यास तथा सुप्रजाजननकी उत्तम शक्ति स्थिर करनेका यत्न करे। अपना और समाजका नित्य संबध जानकर अपने आपको समाजका एक अवयव समझ कर, समाजकी उन्नतिके लिये अपनी इतिकर्तव्यता करनेका पूर्ण निश्चय करे। इस मंत्रकी दृष्टिसे जो जहां दोष होंगे वहांसे उन दोषोंको निकालनेका पुरुषार्थ करना हरएकका कर्तव्य है।

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता-
ऽन्नमिषवः॥ तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु॥
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः॥३॥

अर्थ— (प्रतीची दिक्) पश्चिम दिशा का (वरुणः अधिपतिः) वर अर्थात् श्रेष्ठ अधिपति, (पृत्-आ-कुः रक्षिता) स्पर्धामें उत्साह धारण करनेवाला संरक्षक और (अन्नं इषवः) अन्न इषु हैं। उन श्रेष्ठ अधिपतियोंके लिये, उन उत्साही संरक्षकोंके लिये तथा उस अभीष्ट अन्नके लिये हमारा आदर है। जो सबके साथ कलह करता है इस लिये सब भद्र पुरुष जिसको नहीं चाहते हैं उसको उक्त अधिपतियों और संरक्षकोंके न्यायके जबडेमें धर देते हैं।

मानसिक ध्यान—पश्चिम दिशा विश्रामकी दिशा है; क्योंकि सूर्य, चंद्र, आदि सब दिव्य ज्योतियां इसी पश्चिम दिशामें जाकर गुप्त होती हैं और जगतको अपना दैनिक कार्य समाप्त करनेके पश्चात् विश्राम लेनेकी सूचना देती हैं। पूर्व दिशाद्वारा प्रवृत्तिरूप पुरुषार्थकी सूचना होगई थी, अब पश्चिम दिशासे गुप्त स्थानमें प्रविष्ट होने, वहां विश्रांति और शांति प्राप्त करने, अर्थात् निवृत्तिरूप पुरुषार्थ साध्य करनेकी सूचना मिली है। श्रेष्ठ उत्साही महात्मा पुरुष इस मार्गके क्रमशः अधिपति और संरक्षक हैं। विश्राम और आरामका मुख्य साधन यहां अन्न है। श्रेष्ठ और उत्साही अधिपति और संरक्षकोंके लिये सबको सत्कार करना उचित है। तथा अन्नकी

ओर सन्मानकी दृष्टिसे देखना योग्य है। जो सबके मार्गोंमें विघ्न करता है इसलिये जिसको कोई पास करना नहीं चाहते उसको अधिपतियों और संरक्षकोंकी न्यायसभाके आधीन करना योग्य है। समाजके हितके लिये सबको उचित है कि वे न्यायानुसारही अपना सब बर्ताव करें और किसीको उपद्रव न दें।

अनुष्ठान—इस मंत्रके अनुसंधानसे अपने समाजकी और अपनी परीक्षा कीजिए और किस अवस्थापर अपनी स्थिति है इसका विचार कीजिए। अपने अन्नादिककी अवस्थाका सूक्ष्म निरीक्षण कीजिए तथा इसमें जो प्रतिबंधक शक्तियां कार्य कर रहीं होंगी उन सबका निराकरण करनेका उपाय सोच लीजिए। अपना और समाजका आराम, विश्राम और आध्यात्मिक आदर्श किस प्रकारका है, इस बातका विचार करके निश्चय कीजिए कि इस विषयमें अपना कर्तव्य क्या है और उसको किस प्रकार पूर्ण करना चाहिए? तथा जो उपाय सूझेगा और करनेयोग्य होगा उसको करनेका निश्चय कीजिए। क्योंकि जिस समाजका एक अवयव आप हैं उसकी न्यूनतामें आपकीही न्यूनता है, इस लिये उसको आदर्श समाज बनाना आपका अवश्य कर्तव्य है। उसकी पूर्णतामेंही आपकी पूर्णता है।

ॐ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनि-
रिषवः ॥ तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो
नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ॥ यो ३ स्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः ॥ ४ ॥

अर्थ—(उदीची दिक्) उत्तर दिशाका (सोमः अधिपतिः) शांत अधिपति, (स्व–जः रक्षिता) स्वयं सिद्ध रक्षक और (अशनिः इषवः) विद्युत्तेज इषु हैं। उन शांत अधिपतियों, स्वयंसिद्ध संरक्षकों और तेजस्वी इषुओंके लिये हमारा नमन है। जो सबका द्वेष करता है और जिसका सब द्वेष करते हैं उसको उक्त अधिपतियों और संरक्षकोंके न्यायके जबडेमें धर देते हैं ॥

मानसिक ध्यान—उत्तर दिशा उच्चतर अवस्थाकी सूचना देती है। हरएक मनुष्यको अपनी अवस्था उच्चतर बनानेका प्रयत्न हर समय करना चाहिए। इस उच्चतर मार्गमें शांत स्वभावका आधिपत्य है, आलस्य छोड कर सदा सिद्ध और उद्यत रहनेके धर्मसे इस पथपर चलनेवालोंका संरक्षण होता है। व्यापक तेजस्वी स्वभावके द्वारा इस मार्गपरकी सब आपत्तियां दूर होतीं हैं। इस लिये मैं इन गुणोंका धारण करूंगा और समाजके साथ अपनी अवस्था उच्चतर बनानेका पुरुषार्थ अवश्य करूंगा। शांत स्वभाव धारण करनेवाले अधिपति, सदा उद्यत और सिद्ध संरक्षकही सदा सन्मान करने योग्य हैं। साथही सर्वोपयोगी व्यापक तेजस्विताका आदर करना योग्य है। जो सबकी हानी करता है इसलिये जिसका सब सज्जन निरादर करते हैं उसको उक्त अधिपतियों और संरक्षकोंके सन्मुख खडा किया जावे। लोकही स्वयं उसको दंड न देवें। तथा अधिपति निःपक्षपातकी दृष्टिसे उसको योग्य न्याय देवें। समाजकी उच्चतर अवस्था बनानेके लिये उक्त प्रकारके स्वभाव धारण करना अत्यंत आवश्यक है।

अनुष्ठान—अपनी और समाजकी अवस्था उच्चतर करनेका विचार इस मंत्रके अनुसंधानसे उपासकको करना चाहिए। उच्चतर अवस्था तुलनात्मक होनेसे हरएक समय अवस्थाका सुधार किया जा सकता है। उच्चतर अवस्था बननेके लिये जिन गुणोंका विकास करना उचित है, उन गुणोंका विकास करनेकी प्रतिज्ञा इस समय कीजिए।

> ॐ ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता
> वीरुध इषवः॥ तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
> रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु॥
> यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः॥५॥

अर्थ—(ध्रुवा दिक्) स्थिर दिशाका (विष्णुः अधिपतिः) उद्यमी अधिपति, (कल्माष-ग्रीवः रक्षिता) कर्म कर्ता संरक्षक और (वीरुधः इषवः) वनस्पतियां इषु हैं। इन सब अधिपतियों और रक्षकोंके लियेही हमारा आदर है। इ०॥

मानसिक ध्यान—ध्रुव दिशा स्थिरता, दृढता, आधार आदि शुभ गुणोंकी सूचक है। चंचलता दूर करने और स्थिरता प्राप्त करनेके लिये ही सब धर्मके नियम हैं। उद्यमी और पुरुषार्थी पुरुष यहां अधिपति और संरक्षक हैं। क्योंकी कर्मसेही जगत्‌की स्थिति है, इसलिये कर्मके विना किसीकी स्थिरता और दृढता हो नहीं सकती। यही कारण है कि इस दृढताके मार्गके उद्यमी और पुरुषार्थी संचालक हैं। यहां औषधि वनस्पतियां दोष निवारणद्वारा साहाय्य करती हैं। जो जो दोषोंको दूर करनेवाले हैं वे सब इस मार्गके सहायक हैं। उद्यमी और पुरुषार्थी अधिपति और संरक्षकोंका सन्मान सबको करना चाहिए। इ० ॥

अनुष्ठान—अपनी और समाजकी स्थिरता और दृढता करनेका विचार यहां इस मंत्रके अनुसंधानसे कीजिए और जो जो उपाय सूझेंगे उनको करनेका अवश्य यत्न कीजिए। क्योंकि चंचलतासे इस जगत्‌में कोई कार्य बन नहीं सकता, जो कुछ उन्नति साध्य होती है, वह स्थिरतासे और दृढतासे प्रयत्न करनेपरही होती है।

ॐ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता
वर्षमिषवः ॥ तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ॥
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जंभे दध्मः ॥६॥

अ. ३ । २७ । ६

अर्थ—(ऊर्ध्वा दिक्) ऊर्ध्व दिशाका (बृहस्पतिः अधिपतिः) आत्मज्ञानी स्वामी है,। (श्वित्रः रक्षिता) पवित्र संरक्षक है और (वर्षं इषवः) अमृत जल इषु हैं। आत्मज्ञानी स्वामियोंका तथा पवित्र संरक्षकोंकाही सबको सन्मान करना योग्य है। शुद्ध अमृत जलकाही सबको आदर करना चाहिए। इ० ॥

मानसिक ध्यान—ऊर्ध्व दिशा आत्मिक उच्चताका मार्ग सूचित करती है। सच्चा आत्मज्ञानी आप्त पुरुषही इस मार्गका अधिपति और मार्गदर्शक है। जो अंतर्बाह्य पवित्र होगा वहही यहां संरक्षक हो सकता है। आ-

त्माके अनुभव और पवित्रत्वका यहां स्वामित्व है। आत्मिक उच्चताके मार्गका अवलंबन करनेके समय आत्मज्ञानी आप्त पुरुषके आधिपत्यमें तथा पवित्र सदाचारी सत्पुरुषके संरक्षणमें रहते हुएही इस मार्गका आक्रमण करनेसे इष्ट सिद्धियोंकी वृष्टि होती है। आत्मिक अमृत जलका रसास्वाद लेनेका यही योगमार्ग है। मैं इस मार्गका आक्रमण अवश्यही करूंगा और दूसरोंका मार्गभी यथाशक्ति सुगम करूंगा। मैं सदाही उक्त प्रकारके आत्मज्ञानी और शुद्ध सदाचारी सत्पुरुषोंका सन्मान करूंगा। इ० ॥

अनुष्ठान—आत्मिक उच्चताकी प्राप्तिके मार्गका इस मंत्रके अनुसंधानसे विचार यहां करना चाहिए। तथा अपना व्यवहार उस दृष्टिसे करनेका यहां निश्चय करना चाहिए। व्यक्तिकी और समाजकी सच्ची उन्नति इस दृष्टिके साथ प्रयत्न होनेसेही होती है। इसलिये पूर्व लेखानुसार इस मंत्रके अनुष्ठानमेंभी अपनी यथायोग्य आत्मिक उन्नति करनेका पूर्ण दृढ निश्चय करना योग्य है।

इस "मनसा परिक्रमा" के छः मंत्रोंमें मानवी उन्नतिके छः केंद्र छः दिशाओंके द्वारा सूचित किये हैं। (१) प्राची, (२) दक्षिणा, (३) प्रतीची, (४) उदीचि, (५) ध्रुवा और (६) ऊर्ध्वा ये छः दिशाएं क्रमशः (१) प्रगति, (२) दक्षता, (३) विश्राम, (४) उच्चता, (५) स्थिरता, और (६) आत्मिक उन्नतिके भाव बता रहीं हैं, ऐसा जो उक्त छः मंत्रोंद्वारा सूचित किया है, विशेष विचार करने योग्य है। उपासक इन दिशाओंमें होनेवाली नैसर्गिक घटनाओंको विचारकी दृष्टिसे देखें। इस सृष्टिके विविध घटनाओंकेद्वारा सर्वव्यापक परमात्मा प्रत्यक्ष उपदेश दे रहा है, ऐसी भावना मनमें स्थिर करके उपासकोंको सृष्टिकी ओर देखना आवश्यक है। जड भावको छोडकर परमात्माके चैतन्यसे यह सृष्टि ओतप्रोत व्याप्त है, ऐसी भावना मनमें स्थिर करना चाहिए। क्योंकि "यह पूर्णसृष्टि उस पूर्ण परमेश्वरके द्वाराही उदयको प्राप्त होती है। और उस पूर्ण ईश्वरकी शक्तिही इस सृष्टिद्वारा दिखाई दे रही है।" इस प्रकार विचार स्थिर करके यदि उपासक उक्त प्रकार छः दिशाओंद्वारा अपनी उन्नतिके छः केंद्रो-

के संबंधमें उपदेश लेंगे तो व्यक्ति और समाजकी उन्नतिके स्थिर और निश्चित मार्गोंका ज्ञान उनको हो सकता है ।

उपस्थानम् ।

(ऋषिः–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–सूर्यः)

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ॥
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

यजु. ३५ । १४

अर्थ—(वयं) हम सब (उत्) उत्कृष्ट (तमसः) प्रकृतिसे (परि) परे (उत्तरं) अधिक उत्कृष्ट (स्वः) स्वकीय जीवात्माका (पश्यंतः) अनुभव करते हुए, (उत्तमं) सबमें उत्कृष्ट (ज्योतिः) परमात्मतेजको (अगन्म) प्राप्त करते हैं, जो (देव–त्रा देवं) सब दिव्य पदार्थोंका प्रकाशक और (सूर्यं) स्वयंप्रकाशी अथवा सबका प्रेरक देव है ।

मानसिक ध्यान—(१) प्रकृति और उसका बना हुआ प्राकृतिक जगत् उत्कृष्ट है, क्यों कि वह जीवोंकी उन्नतिका उत्कृष्ट साधन है । पूर्ण परमेश्वरके निमित्तसे इस सृष्टिकी उत्पत्ति होनेसे यह सृष्टिभी पूर्ण ही है । (२) इस साधनरूप जगत्की अपेक्षा साधक अर्थात् साधनका उपयोग करके सिद्धिको प्राप्त होनेवाला जीवात्मा अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यह जीव उक्त साधनका उपयोग करके अपनी उन्नति अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर सकता है । (३) उक्त दोनोंसेभी अधिक श्रेष्ठ सर्वोत्तम परात्पर पुरुष अथवा पुरुषोत्तम है, क्योंकि वह स्वयं सर्व शक्तिमान्, सर्वाधार, स्वयंभु, और सर्वप्रकाशक है । यह सर्वोत्तम होनेसे उपास्य है और जीव इसके उपासक हैं । हम सब जीव प्रथमतः प्रकृतिसे बनेहुए इस दृश्य और स्थूल जगत्का अनुभव करते हैं । तदनंतर इसकी सूक्ष्म शक्तियोंको जानने लगते हैं । पश्चात् हम अपने अंतरात्माका अनुभव प्राप्त करते हैं और इस अनुभवके पश्चात् हम परमात्माका साक्षात्कार करते हैं । क्यों कि वह परमात्मा सबसे परे, सबसे सूक्ष्म, और सबसे श्रेष्ठ है । इसलिये जगत् और जीवके ज्ञानके पश्चात् उसका ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।

अनुष्ठान—प्रथमतः सब सृष्टिको पवित्र और शुभ समझ लीजिए। इस जगत्को बंधनरूप न मानिए। क्यों कि परम मंगलमय परमेश्वरकी जो यह सृष्टिरूप कृति है वह अमंगल नहीं हो सकती। परमात्माकी व्यापक बुद्धि इस जगत्के रूपमें फैली है, ऐसी दृष्टि सदा धारण कीजिए। इस साधनरूप पवित्र जगत्का साधक मैं जीवात्मा इस शरीरसे भिन्न और स्वतंत्र हूं, मैं इस साधनका उपयोग करके सिद्धिको प्राप्त करूंगा और विघ्नोंसे कभी निरुत्साहित नहीं होऊंगा, ऐसी भावना मनमें स्थिर कीजिए। और सर्व सामर्थ्योंसे युक्त परमात्माका चिंतन कीजिए जिससे अपने अंदर सब प्रकारकी शक्ति बढने लगेगी। इस समय किसी प्रकारका अपवित्र विचार मनमें न रखिए।

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहंति केतवः ॥
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

ऋ. १।५०।१; यजु ३३।३१

अर्थ—(केतवः) ज्ञानी धुरीण लोक (विश्वाय दृशे) सब को ज्ञान देनेके लिये (त्यं जात-वेदसं) उस जने हुए जगत्को यथावत् जाननेवाले (देवं सूर्यं) दिव्य प्रेरक ईश्वरका (उत् वहंति) अनुभव करते हैं अथवा उसके साथ संयुक्त होते हैं।

मानसिक ध्यान—ज्ञानी लोकही परमात्माके स्वरूपका अनुभव करते हैं। जो स्वयं अनुभव करते हैं वेही उस दिव्य अनुभवका ज्ञान दूसरोंको दे सकते हैं। परमात्मा स्वयं सर्वज्ञ, दिव्य, सबका प्रेरक और सबसे श्रेष्ठ है। वहही एक सबका उपास्य आत्मा है। उसका ज्ञानी आप्त पुरुषोंसे ही बोध हो सकता है। इसलिये मैं ज्ञानी गुरुजनोंके पास जाकर परमात्माका साक्षात्कार करनेका उपाय जान लूंगा और श्रद्धाभक्तिसे ध्यानधारणादि-द्वारा उसका साक्षात्कार करूंगा। जो जो उनके साधनके उपाय हैं, उनको प्राप्त करूंगा और जो जो बाधा डालनेवाले होंगे उनको मैं दूर करूंगा। इस प्रकार करनेसे मुझे शीघ्रही परमात्मस्वरूपका ज्ञान होगा। वह बडा ही आनंद और सौभाग्यका समय होगा कि जिस समय मुझे आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होगा। हे परमात्मन्! मेरे अंतःकरणमें ऐसी भक्ति उत्पन्न

करो कि जिससे मैं कुतर्कोंसे दूर होकर तेरे स्वरूप का अनुभव शीघ्रही प्राप्त कर सकूं। जिस प्रकार झंडियां उत्सव स्थानकी सूचना यात्रियोंको दूरसे ही देतीं हैं, ठीक उस प्रकार ज्ञानी लोकही स्वयं झंडे बनकर सब उपासकोंको उसी दिव्य आत्माकी सूचना देते रहते हैं। परमात्माके दिव्य स्वरूपका प्रकाश इन आप्त पुरुषोंके अंतःकरणोंसे होता है। हे आनंद स्वरूप परमात्मन्! इस प्रकारका मेरा शुद्ध अंतःकरण बनाओ कि जिसमें तेरी दिव्य ज्योतिका प्रकाश हमेशा तेजस्वीही होता रहेगा।

अनुष्ठान—जो आपका आप्त पुरुष अथवा गुरु होगा, जिससे अथवा जिसके द्वारा आपको आत्मिक ज्ञानका लाभ हुआ है, उसका स्मरण करके, अथवा अपने पूज्य आचार्यका स्मरण करतेहुए उनके लगाये झंडेसे दिव्य परमात्माके तेजकी प्राप्ति मुझे हुई है, ऐसा मानकर, शुद्ध दिव्य ज्ञानस्वरूप पवित्र मंगलमय परमात्माके शुभ गुणोंका चिंतन कीजिए। उन शुभ गुणोंसे अपने मनको ऐसा पूर्ण भर दीजिए कि जिससे भराहुआ अपना मन इधर उधर न भटक सके। जहांतक हो सके वहांतक चित्तकी एकाग्रता संपादन कीजिए और क्षुद्र विचारोंसे अपना मन कलंकित न कीजिए।

(ऋषिः—कुत्स आंगिरसः ॥ देवता—सूर्यः)

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥
आप्रा द्यावापृथिवी अंतरिक्षँ सूर्य आत्मा जगत-
स्तस्थुषश्च ॥ स्वाहा ॥

ऋ. १।११५।१; यजु. ७।४२

अर्थ—जो (देवानां) सब देवताओंमें (चित्र) विलक्षण और (अनीकं) बलवान् है, (मित्रस्य) सूर्य (वरुणस्य) वरुण और अग्नि आदिकोंको भी जो (चक्षुः) प्रकाश देता है, (द्यावा-पृथिवी) द्युलोक, पृथिवी और (अंतरिक्षं) अंतरिक्ष लोकमें भी जो (आ-अप्रा) व्यापक है, तथा(तस्थुषःच) स्थावर और (जगतः) जंगम का भी जो (आत्मा) अंतरात्मा है, वह (सूर्यः) सकल जगत् का उत्पादक परमात्मा मेरे अंतःकरणमें (उत्-अगात्) प्रकाशित होवे। (स्व-आ-हा) मैं पूर्ण त्याग करता हूं।

मानसिक ध्यान—परमात्मा सबसे विलक्षण और अद्भुत सामर्थ्य-शाली है, वह सूर्यादिकों को प्रकाश देता है, संपूर्ण जगत् में पूर्णतया व्यापक है, और स्थावर जंगम सब जगत् का अंतरात्मा वह ही है। मैं उसी एक ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करता हूं। मेरी इतनी ही प्रबल इच्छा है कि वह मेरे हृदयमें प्रकाशित होवे, ताकी उसके साक्षात्कारसे मैं पवित्र और कृतकार्य बनूं। साथही मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि स्वार्थपरायणताका त्याग करता हुआ मैं परोपकारका जीवन व्यतीत करूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि परमात्मसेवाका यही शुद्ध मार्ग है।

अनुष्ठान—इस समय उपासकको अपने मनमें यह विचार स्थिर करना चाहिए कि, सब पदार्थमात्रमें परमात्मा पूर्णतया भरा है और सब पदार्थ परमात्मा में हैं। मैं परमात्मा में हूं और मेरे अंदर परमात्मा है। मैं और परमात्मा दोनों ऐसे एकत्र मिले हैं कि उनमें कोई अंतर नहीं है। जिस प्रकार अग्निमें लोहा रहाहुआ तपकर अग्निरूप बन जाता है, उसी प्रकार परमात्माके अंदर मैं रहनेसे उसके तेजस्वी होनेके कारण मैं भी उस दिव्य तेजके द्वारा अंदरबाहिरसे तेजस्वी हो रहा हूं और होगया हूं। अब मैं शुद्ध, पवित्र, निर्मल और तेजस्वी हूं। मैं बंधनरहित हूं। मैं केवल आत्मा हूं। और मेरे आत्मामें वह जगदात्मा प्रकाशमान हो रहा है॥

इस प्रकार स्थिर चित्तसे जितनी देर होसके उतनी देर ध्यान कीजिए और जो अनुभव आवेगा, उसको दूसरी संध्याके समयतक स्मरण रखिए।

(ऋषिः—दध्यङ्ङाथर्वणः। देवता—सूर्यः)

ॐ तच्चक्षुर्देव-हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत-
मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

यजु. ३६। २४

अर्थ—(तत्) वह (देव-हितं) देवोंके लिये हितकारक (शुक्रं) पवित्र (चक्षुः) ज्ञानतेज (पुरस्तात्) मेरे सन्मुख (उत् चरत्) उदित होगया है। उस तेजमें रहते हुए हम सब (शरदः शतं पश्येम) सौ वर्ष

देखें, (शरदः शतं जीवेम) सौ वर्ष जीते रहें, (शरदः शतं शृणुयाम) सौ वर्ष सुनें, (शरदः शतं प्रब्रवाम) सौ वर्ष प्रवचन करें, (शरदः शतं अदीनाः स्याम) सौ वर्ष दीन न बनते हुए रहें, (शरदः शतात् भूयः) सौ वर्षसेभी अधिक आयु प्राप्त करके आनंद के साथ रहें ॥

मानसिक ध्यान—परमात्मा सबका हितकारी है। और उसका उदय सदा से ही हो गया है। क्यों कि उसका अस्त कभी हो ही नहीं सकता। हमारी शुद्धता और पवित्रतासे उसका जब साक्षात्कार हमें होता है, तब कहा जाता है, कि उसका उदय हमारे अंतःकरणमें अथवा हमारे अंतरात्मा-के सन्मुख हो गया है। इस लिये मैं सब प्रकार से पवित्र बनकर उस-का दर्शन करूंगा। उसके कृपाछत्र की छायामें आकर, निर्भय बनकर, सौ वर्षकी आयु अथवा उससेभी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करूंगा, और पूर्ण दीर्घ आयुकी समाप्तितक, दीन न बनता हुआ, पुरुषार्थके साधक अपने सब इंद्रियों और अवयवोंकी शक्ति बढाता हुआ, और उनको नीरोग, निर्दोष, पवित्र और शुद्ध बनाता हुआ, आनंदसे परमात्मा के गुणोंका कीर्तन करूंगा, और उसीकी भक्ति और उपासना करूंगा।

अनुष्ठान—अंगस्पर्श, इंद्रियस्पर्श और मार्जनके मंत्रोंद्वारा जिन जिन अंगों और अवयवोंकी नीरोगता, स्वस्थता, सबलता और पवित्रता संपादन करनेका यत्न हुआ है, उन सब अंगों और इंद्रियोंको सौ वर्षकी पूर्ण आयु-तक अथवा उससेभी अधिक दीर्घ आयुकी समाप्तितक, पूर्णबलवान् और कार्यक्षम रखनेकी सूचना इस मंत्रद्वारा मिली है। इसलिये मनमें ऐसी दृढ भावना इस समय धारण करनी चाहिए कि मैं योग साधनादि द्वारा उत्तम नियमोंका पालन करके सौ वर्ष की अधिक दीर्घ आयु अवश्य प्राप्त करूंगा। मैं अपना आचरण और चालचलन ऐसा रखूंगा कि जिससे मैं अपनी दीर्घ आयुकी समाप्ति तक, दीन, दुर्बल अथवा पराधीन कभी नहीं बनूंगा। सदा ही मैं उत्साही, बलवान्, स्वाधीन, और स्वतंत्र रहूंगा। मेरे आंखोंमें उत्तम दृष्टि रहेगी, मेरे कानोंमें उत्तम श्रवण शक्ति निवास करेगी, मेरे मुखमें उत्तम वक्तृत्वशक्ति स्थिर रहेगी, तथा अन्य अंगों, अवयवों और इंद्रियोंमें अपनी निजशक्ति उत्तम प्रकारसे स्थिर रहेगी। आयु

बढनेसे मेरी शक्ति कभी क्षीण नहीं होगी। मैं ऐसा ही सुनियमोंके अनुकूल आचरण करूंगा कि जिससे मेरी शक्ति कभी क्षीण नहीं होगी। मैं धर्मानुकूल आचरण करके स्थूल शरीरकी नीरोगता, मनमें सुविचार और आत्मामें दिव्य शांति स्थिर करूंगा ॥

इस प्रकारके विचार इस समय मनमें धारण कीजिए और दृढ विश्वासपूर्वक समझ लीजिए कि पूर्ण आयुकी समाप्तिके पूर्व अपनी मृत्यु नहीं होगी। जैसी भावना उपासक अपने मनमें रखेंगे वैसी ही उनको सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसी लिये वेदमंत्रों में कहे हुए भाव सदा मनमें स्थिर करने चाहिए। और कभी कुसंस्कारोंको अपने मनमें आनेही नहीं देना चाहिए। आपकी आज्ञाके विना आपके शरीर, मन और आत्मामें कोई अदल बदल नहीं हो सकता। दुष्ट भावना मनमें होनेके कारण ही सब कष्ट होते हैं इसलिये सदा शुभ भावनाओंकी मनमें धारणा करनी चाहिए।

(१०) गुरुमंत्रः ।

(ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—सविता)

ॐ भूर्भुवः स्वः ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ऋ. ३।६२।१०; य. ३६।३

अर्थ—(ॐ) उत्पत्ति स्थिति प्रलय कर्ता (भूः) सत् (भुवः) चित् और (स्वः) आनंद स्वरूप (सवितुः) जगदुत्पादक (देवस्य) ईश्वरके (तत् वरेण्यं भर्गः) उस श्रेष्ठ तेजका हम सब (धीमहि) ध्यान करते हैं, इसलिये कि (यः) वह (नः धियः) हम सबकी बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) विशेष प्रेरणा करे ।

मानसिक ध्यान—परमेश्वर सब जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करता है, वह सच्चिदानंद स्वरूप और सबको प्रेरणा करनेवाला है। उसके श्रेष्ठ तेजका हम सब इस लिये ध्यान करते हैं कि ध्यान करनेसे वह हम सबकी बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा करके उत्तम और श्रेष्ठ बनाता है। हे

ईश्वर ! हे परमात्मन् ! हे अंतर्यामिन् ! कृपा करो, दया करो और इस भक्तको पवित्र और शुद्ध बनाओ ।

अनुष्ठान—इस मंत्रका उच्चारण करनेके समय परमेश्वरके पवित्र तेजकी और शक्तिकी कल्पना करनी चाहिए। जो अपनी परमेश्वर विषयक उच्चसे उच्च कल्पना होगी अर्थात् वेदमंत्रोंमें कहे ईश्वरके स्वरूपके वर्णनसे जो कल्पना मनमें होगई होगी, उसको इस समय मनमें और बुद्धिमें स्थिर करनेका यत्न करना चाहिए। मेरी बुद्धिको वह परमात्मा उच्च प्रेरणा कर रहा है, उसके श्रेष्ठ तेजसे मैं तेजस्वी हो रहा हूं, उसकी सत्तासे मेरी सत्ता मिली है, उसके ज्ञानसे मैं संयुक्त हो रहा हूं, उसका आनंद मेरे अंदर आरहा है, उसके ऐश्वर्यसे मैं सुशोभित हो रहा हूं, उसकी दिव्यशक्तियोंसे मैं दिव्य बन रहा हूं; ऐसी भावना मनमें धारण कीजिए और सर्वव्यापक परमात्मामें अपने आपको संमिलित समझ लीजिए। अपने चंचल मनको स्थिर और शांत कीजिए और इस मंत्रके सुविचार के अतिरिक्त कोई दूसरा विचार ही मनमें न आने दें ॥ इस प्रकार स्थिरतासे मनकी शुभ भावना रखिए और इस मंत्रका जप कीजिए। तीन, दस, अठाईस, एकसौ आठ अथवा जितना आप करना चाहते हैं उतना जप कीजिए। मंत्रोच्चार के साथ अर्थकी भावना मनमें स्थिर रखनेसे जप होता है और चित्तकी एकाग्रता होती है। जपके समय मंत्रोच्चार करने के विविध प्रकार हैं, जो अपने योग्य प्रकार आप समझते हैं, उस प्रकारके अनुकूल आप जप कीजिए। किसी प्रकारमें मंत्रका उच्चार गडबडके साथ अर्थात् जलदीसे नहीं करना चाहिए, परंतु शनैःशनैः करना चाहिए, तथा मंत्रका रस अपने मनमें भरनेका यत्न करना चाहिए। तभी जपका फल मिलता है। (१) मंत्रोच्चार खुली आवाज से करना, जो साथ बैठे दस पांच मनुष्योंको सुनाई देवे। यह प्रकार अत्यंत साधारण है। (२) मंत्रोच्चार इतने छोटे स्वरमें करना कि केवल अपने कान ही उसको सुन सकें। पूर्व प्रकारसे यह श्रेष्ठ है। (३) शब्दोंका उच्चार न करतेहुये होंट हिलाकर मंत्र चुपचाप बोलना, इस समय शब्दका इतना सूक्ष्म उच्चारण होता है कि वास्तविक शब्दका श्रवण अपने कानसेभी नहीं होता, परंतु मंत्रश्रवणका भास अवश्य होता है। (४) मुख बिलकुल बंद

करके, शब्दका बाहिर उच्चार न करते हुए, अंदर जिह्वाको थोडा थोडा हिला-कर, जोरसे मंत्र बोलनेका प्रयत्न, शब्दोंका व्यक्त उच्चार न करते हुए, करना । शब्दका बाहिर उच्चार न होनेपर भी श्रवणका भास होता है । (५) पूर्वोक्त प्रकार ही, परंतु जोरसे मंत्र बोलनेका प्रयत्न न करते हुए, शब्दोंका अंदरही उच्चार करनेका प्रयत्न करना । इसमें भी शब्दश्रवण का भास होता है । (६) मुख बंद करके और जिह्वाको न हिलाते हुए और उच्चार न करते हुए मंत्रका जप करनेका प्रयत्न करना । इस जपमें भी मंत्रश्रवणका भास होता है ।

पूर्वोक्त प्रकारमें पहिलेसे दूसरा और उससे क्रमशः आगेका प्रकार श्रेष्ठ है । यदि उपासक चाहें तो प्रत्येक अक्षरोच्चारके समय उस अक्षरको कल्पनासेही अपने सन्मुख देखनेका अभ्यास करें इससे चित्त एकाग्र होनेमें सहायता हो सकती है । श्वासके साथ एक बार मंत्रोच्चार और उच्छ्वासके साथ एक बार मंत्रोच्चार करके जप करनेका एक श्रेष्ठ और उत्तम प्रकार है; परंतु प्राणायामका अच्छा अभ्यास होनेके पश्चात ही यह प्रकार साध्य होता है । प्राणायाम का अभ्यास होनेसे पूर्व इस जपको करना योग्य नहीं है । उक्त प्रकारमें एक मंत्रसे कुंभक करनेकाभी और एक विधि है । इसको समंत्रक प्राणजप कहते हैं । प्राणायामका वर्ष दो वर्ष अच्छा अभ्यास होनेके पश्चात् इन दोनों प्रकारोंको किया जा सकता है उससे पूर्व नहीं ॥ अस्तु । जप करनेके समय चित्तको जपमें ही सर्वथा लगाना चाहिए । यदि चित्त इधर उधर जाने लगेगा तो उसको पुनः पुनः वापस लाना चाहिए । इस प्रकार करनेसे एकाग्रता सिद्ध होती है ।

(११) नमनम् ।

(ऋषिः—कुत्सः । देवता—रुद्रः)

ॐ नमः शंभवाय च मयोभवाय च ॥
नमः शंकराय च मयस्कराय च ॥
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु. १६ । ४१

अर्थ—(शं-भवाय नमः) शांति देनेवाले ईश्वरके लिये मेरा नम-

स्कार है । (मयो-भवाय नमः) सुखदायक परमात्मा के लिये मेरा नमन है । (शं-कराय नमः) शांति करने वाले ईश्वर के लिये मेरा नमस्कार है । (मयः-कराय नमः) सुखी करनेवाले ईश्वर के लिये मेरा नमन है । (शिवाय) कल्याण स्वरूप ईश्वर के लिये तथा (शिव-तराय नमः) अत्यंत मंगलमय परमात्माके लिये मेरा नमस्कार है ॥

मानसिक ध्यान—परमेश्वर शांति और सुख देनेवाला, सबको शांत और सुखी करनेवाला तथा स्वयं कल्याण स्वरूप और अत्यंत मंगलमय है । नम्रतायुक्त अंतःकरणसे मैं उसकी शरण जाता हूं और उसी एक अद्वितीय मंगलमय जगच्चालकको नमस्कार करताहूं । हे परमात्मन्! हे कृपालो! हे दयाघन सच्चिदानंद! तेरी भक्ति मेरे हृदयमें स्थिर कर। यही मेरी प्रार्थना और यही मेरी इच्छा है । पूर्ण करो, पूर्ण करो, पूर्ण करो ॥

अनुष्ठान—मनमें शांति और शुभ भावना धारण करके अत्यंत नम्रता के साथ परमेश्वरको नमन कीजिए ॥

॥ ओ ३ म् । शांतिः । शांतिः । शांतिः ॥

हे ईश्वर ! तेरी कृपासे हरएक व्यक्तिको शांति प्राप्त होवे ।
हे ईश्वर ! तेरी कृपासे संपूर्ण समाजको शांति प्राप्त होवे ।
हे ईश्वर ! तेरी कृपासे संपूर्ण जगत्को शांति प्राप्त होवे ।

अनुक्रमणिका.

आसन ।

"योग की आरोग्य वर्धक व्यायाम पद्धति" ।

"संध्योपासना" आदि सब धर्मकृत्योंमें सबसे प्रथम "आसन" लगानेकी आवश्यकता है। आसन लगानेके विना कोईभी धर्मकृत्य नहीं होता। इतना धर्मकृत्यके साथ आसनोंका दृढ संबंध है।

आसनोंका महत्त्व ।

आसनोंका महत्त्व उतनाही है कि, जितना आरोग्यका महत्त्व है। आरोग्यके साथ आसनोंके व्यायामोंका घनिष्ठ संबंध है। शरीरके सब आंतरिक अवयवों और अंगों तथा नसनाडियोंका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् प्राचीन काल के ऋषि मुनि और योगियोंने इस आसन पद्धतिकी सिद्धता की है। ऋषिकालसे इस समय तक जिन्होंने आसनोंका अभ्यास किया है, उनको—

आसनों के अभ्यास से लाभ ।

अर्थात् आसनोंसे आरोग्य प्राप्तिका अनुभव हुआ है। यह बात केवल श्रद्धा अथवा अंध-विश्वाससे ही माननेकी नहीं है। इस समयमें भी सहस्रोंकी संख्यामें अनेक लोगोंने इस आसन पद्धतिके व्यायामसे अपूर्व लाभ उठाया है! आप भी केवल तर्क न कीजिये। परंतु-

स्वयं अनुभव लीजिये ।

जहां स्वयं एक दो मासके अंदर ही अनुभव आ सकता है, वहां तर्कका और दलीलोंका काम ही क्या है? अनेक असाध्य बीमारियां इस पद्धतिके आसनोंके व्यायामसे दूर हो गई हैं। औषधिके सेवन की आवश्यकता नहीं है, इसमें व्यय कुछ भी नहीं है। केवल प्रतिदिन १५ अथवा २० मिनिट कुछ आसन आप करते जाइये, आपको आठ दस दिनों के अंदरही इससे आरोग्यका अनुभव निःसंदेह हो जायगा। अनुभव होनेके पश्चात् शंका करनेके लिये स्थान ही नहीं होता है। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अनुभव लीजिये।

इसमें कोई कठिनता नहीं है ।

कई लोग ख्याल करते हैं कि आसन करनेमें बडी कठिनता होती है । परंतु यह वास्तविक नहीं है । आसनोंका अभ्यास बडा सुगम है । आप जितना सुगम चाहते हैं उससेभी सुगम है । इसीलिये इस अभ्याससे इस समयभी ७० और ७५ वर्षके वृद्ध पुरुष लाभ उठा रहे हैं ।

जो आसन ७५ वर्षके वृद्ध कर सकते हैं वे आसन उससे कम आयुवाले निःसंदेह कर सकते हैं । छः वर्षोंसे लेकर ७५ वर्षतक के आयुवाले इस पद्धतिसे इस समय लाभ उठा रहे हैं । बाल, तरुण, वृद्ध, निर्बल, बलवान, रोगी, नीरोग, आदि सबोंको इस पद्धतिसे लाभ हुए हैं । इस लिये यह प्रत्यक्ष अनुभव होनेके कारण ही हम कह सकते हैं कि, इस से सबको निःसंदेह लाभ होगा ।

स्त्रियों के लिये लाभ ।

स्त्रियोंको प्रसूतिके बहुत कष्ट होते हैं । चारों ओर आज कल ये कष्ट बढ रहे हैं । इसका एक मात्र उपाय आसनोंका अभ्यास ही है । अनेक स्त्रियोंने इसका अनुभव लिया है, जिससे यह निश्चय पूर्वक और बलपूर्वक कहा जाता है कि, जो स्त्रियां नियम पूर्वक आसनोंका व्यायाम करेंगी और विशेषतः गर्भवती होनेपर करने योग्य आसन करती जायगी, तो उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होंगे ।

स्त्री और पुरुषोंके लिये लाभकारी ।

इस प्रकार यह आसनोंका व्यायाम स्त्रियों और पुरुषोंके लिये लाभकारी है ।

आसनों का पुस्तक ।

(३) यजुर्वेद स्वाध्याय ।

१ यजु. अ. ३० । नरमेध । .... मूल्य १)
२ यजु. अ. ३२ । एकेश्वर उपासना । ,, ॥)
३ यजु. अ. ३६ । शांतिका उपाय । ,, ॥)

(४) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

(६) आगम-निबंध-माला ।

१ वैदिकराज्यपद्धति । .... मूल्य ।-)
२ मानवी आयुष्य । .... ,, ।)
३ वैदिकसभ्यता .... ,, ॥।)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र । .... ,, ।)